



2026:AHC-LKO:11341

ए.एफ.आर.

29 जनवरी, 2026 को सुरक्षित

13 फरवरी, 2026 को सुनाया गया

उच्च न्यायालय इलाहाबाद,

लखनऊ पीठ

द्वितीय अपील दोषपूर्ण संख्या 87 वर्ष 2017

उत्तर प्रदेश राज्य, द्वारा जिला मजिस्ट्रेट लखीमपुर खीरी एवं 2 अन्य अपीलार्थी (गण)

बनाम

विनोद कुमार चोपड़ा एवं 4 अन्य

.....प्रत्यर्थी (गण)

अपीलार्थी के अधिवक्ता :स्थायी अधिवक्ता,

प्रत्यर्थी के अधिवक्ता :सुशील कुमार रस्तोगी

न्यायालय संख्या - 20

माननीय न्यायमूर्ति प्रशांत कुमार,

सी.एम. आवेदन संख्या 20593/2017

1. श्री अनुज कुदेसिया, अपर महाधिवक्ता एवं वरिष्ठ अधिवक्ता, जिनके साथ श्री हेमंत कुमार पांडेय, विद्वान अपर मुख्य स्थायी अधिवक्ता, अपीलार्थी/राज्य की ओर से उपस्थित हैं, को सुना।

2. यह द्वितीय अपील विद्वान अपर जिला न्यायाधीश, न्यायालय संख्या 5, लखीमपुर खीरी द्वारा सिविल अपील संख्या 230/2001 (प्रभागीय वन अधिकारी एवं अन्य बनाम देव कुमार चोपड़ा एवं अन्य) में पारित निर्णय एवं डिक्री दिनांक 23.07.2003 के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है, जिसके द्वारा अपीलार्थियों द्वारा मियाद अधिनियम की धारा 5 के अंतर्गत सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 96 के तहत विद्वान अपर सिविल जज (सीनियर डिवीजन), लखीमपुर खीरी द्वारा मूल वाद संख्या 108/1995 (देव कुमार चोपड़ा बनाम प्रभागीय वन अधिकारी एवं अन्य) में पारित निर्णय एवं डिक्री दिनांक 15.05.2000 के विरुद्ध अपील दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने हेतु दिया गया आवेदन निरस्त कर दिया गया था। यह अपील 4957 दिनों के विलंब के साथ दायर की गई थी।

3. यह मियाद अधिनियम की धारा 5 के साथ पठित धारा 14 के अंतर्गत विलंब क्षमा करने का एक आवेदन है।

मामले के तथ्यात्मक मैट्रिक्स इस प्रकार हैं:

4. प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 (वादी) एक ईंट-भट्टे के स्वामी थे और ईंट निर्माण के व्यवसाय में थे। प्रत्यर्थी समय-समय पर सरकार और अन्य सरकारी एजेंसियों को ईंटों की आपूर्ति करते थे और जब भी कोटेशन आमंत्रित किए जाते थे, वे उसके लिए कोटेशन देते थे। वर्ष 1992 में, प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 ने 35,000 सर्वोत्तम गुणवत्ता वाली ईंटों के लिए कोटेशन मांगा। वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 द्वारा

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



उक्त कोटेशन दिया गया। दिनांक 07.03.1992 को 35,000 सर्वोत्तम गुणवत्ता वाली ईंटें उपलब्ध कराने और उन्हें प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 के कार्यालय में वितरित करने का आदेश दिया गया। स्वीकृत दर 875/- रुपये प्रति हजार थी, जिसमें परिवहन, उतराई और चट्टा लगाना शामिल था। आदेश के अनुसार वादी/प्रत्यर्थी संख्या 1 और 2 ने 35,000 ईंटों की आपूर्ति की। प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 ने उन्हें अतिरिक्त 8,000 ईंटें प्रदान करने का निर्देश दिया, जिन्हें भी आपूर्ति, परिवहन, उतराई और प्रतिवादी संख्या 2/अपीलार्थी संख्या 3 के कार्यालय में चट्टा लगाया गया। उस समय प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 ने 15,024 ईंटें वापस कर दीं, जो मानक के अनुरूप नहीं थीं, हालांकि, प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 ने 28,476 ईंटें रख लीं, जिनका मूल्य समझौते के अनुसार 24,966.50/- रुपये था। सभी ईंटों की आपूर्ति 27.03.1992 को की गई थी। समझौते के अनुसार भुगतान तीन महीने के भीतर किया जाना था। तदनुसार, भुगतान 27.06.1992 को देय हो गया। ईंटें प्राप्त करने के बाद, प्रतिवादी संख्या 1/अपीलार्थी संख्या 2 ने धनराशि का भुगतान नहीं किया। अतः, वादी ने धनराशि की वसूली के लिए एक वाद प्रस्तुत किया। इस वाद में, अपीलार्थियों द्वारा लिखित कथन दाखिल किया गया था। पक्षों को सुनने के बाद, सिविल न्यायालय ने वादबिंदु विरचित किए और अंततः आदेश दिनांक 15.05.2000 द्वारा वाद डिक्री कर दिया।

5. अपीलार्थियों ने सिविल न्यायालय द्वारा पारित इस डिक्री और निर्णय दिनांक 15.05.2000 को अपीलीय न्यायालय यानी अपर जिला न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी के समक्ष सिविल अपील संख्या 230/2001 दायर करके चुनौती दी। यह अपील 1 वर्ष और 4 महीने के विलंब के बाद दायर की गई थी और इसे विलंब के आधार पर तथा गुण-दोष के आधार पर आदेश दिनांक 23.07.2003 द्वारा निरस्त कर दिया गया था।

6. इसके बाद लगभग 9 महीने के विलंब के बाद, अपीलार्थियों के अधिवक्ता द्वारा दी गई सलाह पर, इस न्यायालय के समक्ष 21.04.2004 को एक सिविल पुनरीक्षण संख्या 61/2004 दायर किया गया, जिसे आदेश दिनांक 18.09.2015 द्वारा निरस्त कर दिया गया, जिसे नीचे उद्धृत किया गया है:

"राज्य विधि अधिकारी श्री अदनान अहमद स्पष्ट रूप से कहते हैं कि श्रीमती प्रेम वती एवं अन्य बनाम श्रीमती मुन्नी देवी [2009(27)एलसीडी 508] के मामले में इस न्यायालय के निर्णय को देखते हुए यह पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है।

तदनुसार, पुनरीक्षण पोषणीय न होने के कारण खारिज किया जाता है।

पुनरीक्षणकर्ता के लिए कानून के अनुसार उपयुक्त मंच से संपर्क करने का विकल्प खुला रहेगा, यदि वैसी सलाह दी जाती है।"

7. सिविल पुनरीक्षण के निरस्त होने के बाद, आदेश दिनांक 23.07.2003 को चुनौती देते हुए विलंब क्षमा प्रार्थना पत्र के साथ वर्तमान द्वितीय अपील 16.02.2017 को दायर की गई है। इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने 13 वर्ष, 3 महीने और 26 दिन (4957 दिन) का विलंब दर्शाया। विलंब क्षमा आवेदन के समर्थन में दाखिल हलफनामे में विलंब के जो कारण बताए गए थे, वे यह थे कि आक्षेपित आदेश 23.07.2003 को पारित किया गया था, लेकिन कुछ कानूनी सलाह के कारण, इस न्यायालय के समक्ष 21.04.2004 को एक सिविल पुनरीक्षण दायर किया गया था, जो अंततः 18.09.2015 को इस आधार पर खारिज हो गया कि पुनरीक्षण पोषणीय नहीं है। हालांकि, इस न्यायालय ने पुनरीक्षणकर्ता को कानून के अनुसार किसी भी "अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



मंच पर जाने की अनुमति प्रदान की। यह आदेश 18.09.2015 को पारित किया गया था और उसके बाद अपीलार्थियों ने अपील दायर करने के लिए राज्य के विधि विभाग से अनुमति मांगी। अनुमति 04.11.2016 को प्रदान की गई। तत्पश्चात जिला वन अधिकारी, लखीमपुर खीरी ने 17.11.2016 को एक पत्र लिखकर मुख्य स्थायी अधिवक्ता से वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने का अनुरोध किया, जिन्होंने बदले में अधिकारी को आक्षेपित डिक्री और आदेश की प्रमाणित प्रति के साथ दस्तावेज लाने की सलाह दी। प्रमाणित प्रति के लिए 21.11.2016 को आवेदन किया गया था और वह 24.12.2016 को उपलब्ध कराई गई। किसी तरह प्रमाणित प्रति अधिवक्ता को नहीं दी गई और इसलिए डिक्री की प्रमाणित प्रति के लिए आवेदन किया गया, जो उसी दिन उपलब्ध करा दी गई। इसके बाद वर्तमान द्वितीय अपील 16.02.2017 को दायर की गई।

8. चूंकि विलंब क्षमा करने के कारणों को ठीक से स्पष्ट नहीं किया गया था, इसलिए एक पूरक हलफनामा दायर किया गया, जिसमें यह कहा गया है कि सिविल न्यायालय द्वारा पारित आक्षेपित आदेश दिनांक 23.07.2003 के विरुद्ध अपीलार्थी ने 21.04.2004 को इस न्यायालय के समक्ष एक सिविल पुनरीक्षण दायर किया था और उसे 18.09.2015 को खारिज कर दिया गया था। उच्च न्यायालय द्वारा 18.09.2015 को उक्त आदेश पारित किए जाने के बाद, क्षेत्रीय वन अधिकारी, शारदा नगर ने पत्र दिनांक 30.09.2015 के माध्यम से प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी को इसकी सूचना दी। 15.10.2015 को, प्रभागीय वन अधिकारी, खीरी ने मुख्य स्थायी अधिवक्ता से आदेश दिनांक 18.09.2015 की प्रमाणित प्रति प्राप्त करने और भविष्य की रूपरेखा के संबंध में कानूनी राय देने का अनुरोध किया। क्षेत्रीय वन अधिकारी, शारदा नगर ने अपने पत्र दिनांक 12.01.2016 के माध्यम से आदेश दिनांक 18.09.2015 की प्रमाणित प्रति प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी को उनके मार्गदर्शन के लिए भेजी, जिन्होंने कानूनी राय मांगी और राज्य विधि अधिकारी द्वारा 14.01.2016 को कानूनी राय प्रभागीय वन अधिकारी को 18.01.2016 को प्रस्तुत की गई। प्रभागीय वन अधिकारी ने 26.01.2016 को जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल), लखीमपुर खीरी से मामले का संक्षिप्त इतिहास तैयार करने और इस विषय पर अपनी कानूनी राय प्रस्तुत करने का अनुरोध किया। क्षेत्रीय वन अधिकारी, शारदा नगर ने अपने पत्र दिनांक 24.09.2016 के माध्यम से मामले का संक्षिप्त विवरण और अपनी राय जिला शासकीय अधिवक्ता (सिविल) लखीमपुर खीरी को प्रस्तुत की। प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी ने अपने पत्र दिनांक 01.03.2016 के माध्यम से मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ से वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने का अनुरोध किया। मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ ने अपने पत्र दिनांक 04.03.2016 के माध्यम से प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी से एक निश्चित विषय पर आगे की रिपोर्ट मांगी, जिन्होंने बदले में 15.03.2016 को मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ ने अपने पत्र दिनांक 21.03.2016 के माध्यम से प्रमुख सचिव, वन एवं वन्य जीव, उत्तर प्रदेश से द्वितीय अपील दायर करने की अनुमति देने का अनुरोध किया, लेकिन मामला प्रमुख सचिव, वन के समक्ष लंबित रहा। मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ ने पुनः 28.07.2016 को प्रमुख सचिव, वन से अनुमति देने का अनुरोध किया। इसी तरह के अनुरोध 12.09.2016 और 15.09.2016 को भी किए गए थे। प्रभागीय वन अधिकारी ने पुनः क्षेत्रीय वन अधिकारी से द्वितीय अपील दायर करने के लिए आवश्यक स्वीकृति प्राप्त करने हेतु व्यक्तिगत रूप से राज्य सरकार से संपर्क करने को कहा। यह 14.10.2016 को हुआ जब मुख्य वन संरक्षक, लखनऊ मंडल, लखनऊ ने प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी को वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने की प्रक्रिया शुरू करने का निर्देश दिया। अपर विधि

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



परामर्शी ने 04.11.2016 को वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने की स्वीकृति प्रदान की। तत्पश्चात् 17.11.2016 को, प्रभागीय वन अधिकारी, दक्षिण खीरी ने मुख्य स्थायी अधिवक्ता से वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने का अनुरोध किया और उसके बाद वर्तमान द्वितीय अपील 16.02.2017 को दायर की गई।

तर्क

9. अपीलार्थी/राज्य की ओर से उपस्थित विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता ने आगे तर्क दिया कि अपील दायर करने में इस प्रकार हुआ विलंब एक प्रक्रियात्मक विलंब है और इसके अलावा जिस अवधि के दौरान सिविल पुनरीक्षण लंबित था, उस अवधि का लाभ मियाद अधिनियम के अनुसार उन्हें दिया जा सकता है।

10. उन्होंने आगे तर्क दिया कि उपरोक्त को देखते हुए, इस प्रकार हुआ कोई भी विलंब शिथिलता या ढिलाई के कारण नहीं है, बल्कि राज्य द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया के कारण है, जिसमें विभिन्न स्तरों पर स्वीकृति लेनी होती है और तदनुसार, विलंब को क्षमा किया जा सकता है।

11. उन्होंने यह भी तर्क दिया कि विलंब क्षमा आवेदन में पर्याप्त कारण दर्शाया गया है और इस प्रकार हुआ विलंब पूरी तरह से प्रक्रियात्मक है। उन्होंने आगे तर्क दिया कि विलंब को क्षमा करते समय, न्यायालय को इन तथ्यों को देखते हुए उदार दृष्टिकोण अपनाना चाहिए कि कुछ विलंब तो होता ही है क्योंकि अनुमति मिलने और अपील दायर होने से पहले फाइल को विभिन्न स्तरों पर चलना पड़ता है और इसलिए सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित विभिन्न निर्णयों में निर्धारित किए गए अनुसार राज्य और उसकी संस्थाओं के प्रति एक नरम दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए।

12. अपने तर्कों की पुष्टि के लिए, उन्होंने हरियाणा राज्य बनाम चंद्र मणि एवं अन्य, (1996) 3 एससीसी 132 में रिपोर्ट किए गए माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित निर्णय पर भरोसा जताया, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"जी. रामेगौड़ा, मेजर एवं अन्य बनाम विशेष भूमि अध्याप्ति अधिकारी, बेंगलूर; [(1988) 2 एससीआर 198] में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि पक्षकार को उसके अधिवक्ता की सभी गलतियों से बचाने वाला कोई सामान्य सिद्धांत प्रतिपादित नहीं किया जा सकता है। 'पर्याप्त कारण' पद की उदार व्याख्या की जानी चाहिए ताकि वास्तविक न्याय को बढ़ावा दिया जा सके और आम तौर पर अपील प्रस्तुत करने में हुए विलंब को न्याय के हित में क्षमा किया जाना आवश्यक है जहां विलंब क्षमा चाहने वाले पक्षकार पर कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना की कमी का आरोप न लगाया जा सके। जिन मुकदमों में सरकार एक पक्षकार होती है, उनमें एक और पहलू भी होता है, जिसकी शायद उपेक्षा नहीं की जा सकती। यदि सरकार द्वारा लाई गई अपीलें ऐसी चूकों के कारण खारिज हो जाती हैं, तो कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होता है; लेकिन अंतिम विश्लेषण में जो प्रभावित होता है, वह लोक हित है। सरकार के निर्णय सामूहिक और संस्थागत निर्णय होते हैं और इनमें निजी व्यक्तियों के निर्णय जैसी विशेषताएं नहीं होती हैं। मियाद का कानून, निस्संदेह, एक निजी नागरिक के लिए वैसा ही है जैसा कि सरकारी अधिकारियों के लिए है। सरकार को, किसी भी अन्य वादी की तरह, अपने अधिकारियों के कृत्यों या चूकों की जिम्मेदारी लेनी चाहिए। लेकिन मामले को थोड़ा अलग रूप तब मिल जाता है जहां सरकार ऐसा मामला बनाती है जहां उसके अधिकारियों या एजेंटों की ओर से धोखाधड़ी

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



या दुर्भावनापूर्ण कृत्यों के कारण लोक हित को नुकसान पहुंचता हुआ दिखाया गया हो और जहां अधिकारी स्पष्ट रूप से उसके विपरीत उद्देश्यों से काम कर रहे थे। इसलिए, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 5 के उद्देश्यों के लिए क्या पर्याप्त कारण बनता है, इसका आकलन करते समय न्यायिक निर्णय में आने वाले उन कारकों को विचार से बाहर रखना शायद कुछ अवास्तविक होगा जो सरकार के कामकाज के लिए विशिष्ट और लाक्षणिक हैं। सरकारी निर्णय कहावत के तौर पर धीमे होते हैं, क्योंकि वे अपने निर्माण की प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की एक बड़ी मात्रा से घिरे होते हैं। इसलिए, एक निश्चित मात्रा में छूट अनुज्ञेय है। यह ठीक ही कहा गया है कि 'जो सरकार की जिम्मेदारी संभालते हैं, उनके पास जोड़ों में थोड़ा लचीलापन होना चाहिए'। सरकारी कामकाज की इन सीमाओं को - बेशक, उचित सीमाओं के भीतर - उचित मान्यता देना आवश्यक है यदि न्यायिक दृष्टिकोण को अवास्तविक नहीं बनाना है। ऐसे मामलों में सभी मामलों में सरकार और निजी पक्षों को एक ही पायदान पर रखना शायद अनुचित और अवास्तविक होगा। सरकारी कामकाज की प्रकृति में ही निर्णय लेने की प्रक्रिया के प्रासंगिक प्रक्रियात्मक विलंब अंतर्निहित हैं। तदनुसार एक वर्ष से अधिक के विलंब को क्षमा किया गया था।"

(विशेष बल दिया गया)

13. उन्होंने आगे एन. बालकृष्णन बनाम एम. कृष्णमूर्ति के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भरोसा जताया, जो (1998) 7 एससीसी 123 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

"10. इस तरह के एक अलग रुख का कारण यह है: किसी न्यायालय का प्राथमिक कार्य पक्षकारों के बीच विवाद का न्यायनिर्णयन करना और वास्तविक न्याय को बढ़ावा देना है। विभिन्न परिस्थितियों में न्यायालय में जाने के लिए निर्धारित समय सीमा इसलिए नहीं है कि ऐसी समय सीमा समाप्त होने पर कोई खराब मामला एक अच्छे मामले में बदल जाएगा।

12. न्यायालय जानता है कि विलंब को क्षमा करने से इनकार करने का परिणाम एक वादी को अपना मामला पेश करने से रोकना होगा। ऐसा कोई उपधारणा नहीं है कि न्यायालय में जाने में हुआ विलंब हमेशा जानबूझकर किया जाता है। इस न्यायालय ने शकुंतला देवी जैन बनाम कुंतल कुमारी; [1969] 1 एससीआर 1006 और पश्चिम बंगाल राज्य बनाम द एडमिनिस्ट्रेटर, हावड़ा म्युनिसिपैलिटी; [1972] 2 एससीआर 874 के मामले को देखते हुए यह अभिनिर्धारित किया है कि मियाद अधिनियम की धारा 5 के तहत 'पर्याप्त कारण' शब्दों की उदार व्याख्या की जानी चाहिए ताकि वास्तविक न्याय को बढ़ावा दिया जा सके।

13. यह याद रखा जाना चाहिए कि विलंब के प्रत्येक मामले में संबंधित वादी की ओर से कुछ चूक हो सकती है। केवल वही उसकी दलील को खारिज करने और उसके लिए दरवाजे बंद करने के लिए पर्याप्त नहीं है। यदि स्पष्टीकरण से दुर्भावना की बू नहीं आती है या इसे टालमटोल की रणनीति के हिस्से के रूप में पेश नहीं किया गया है, तो न्यायालय को वादी के प्रति अत्यधिक विचार दिखाना चाहिए। लेकिन जब यह सोचने का उचित आधार हो कि पक्षकार द्वारा जानबूझकर समय प्राप्त करने के लिए विलंब किया गया था, तो न्यायालय को स्पष्टीकरण को स्वीकार करने के विरुद्ध झुकना चाहिए।"

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



(विशेष बल दिया गया)

14. इसके अलावा उन्होंने श्रीदेवी दातला बनाम भारत संघ एवं अन्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित एक निर्णय पर भरोसा जताया, जो (2021) 5 एससीसी 321 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

“27. यह स्पष्ट है कि पर्याप्त कारण शब्द सापेक्ष है, तथ्यों पर निर्भर है, और इसके कई रंग हैं, जो मुख्य रूप से प्रत्येक मामले के तथ्यों और उस वादी के व्यवहार से रंग प्राप्त करते हैं जो (न्यायालय में जाने में) विलंब को क्षमा करने की मांग करता है। हालांकि, व्यापक रूप से जिसे सार्वभौमिक रूप से स्वीकार किया जा सकता है वह यह है कि सिद्धांत रूप में, आवेदक को सद्भावना प्रदर्शित करनी चाहिए, उसे लापरवाह नहीं होना चाहिए था, और हुआ विलंब ऐसा नहीं होना चाहिए कि उसे क्षमा करने से दूसरे पक्षकार पर गंभीर प्रतिकूल प्रभाव पड़े।

28. इन सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए, यह विचार करना प्रासंगिक है कि क्या इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में एनजीटी का विवेकाधिकार का प्रयोग करने से इनकार करना त्रुटिपूर्ण था। न्यायालय इस तथ्य के प्रति सचेत है कि विवेकाधिकार का प्रयोग, स्वतः ही, तथ्यों पर निर्भर करता है, और उस कार्य के निष्पादन में प्रथम दृष्टया न्यायालय या न्यायाधिकरण को काफी छूट दी जानी चाहिए। बहरहाल, जैसा कि तय किया गया है, मामलों और निर्णयों ने दिखाया है कि विवेकाधिकार का प्रयोग कभी-कभी इस न्यायालय द्वारा अपीलीय संवीक्षा की मांग करता है। यह उनमें से एक है। अपीलार्थी ने दलील दी कि चूंकि परियोजना आवेदक को दी गई मंजूरी से जुड़े दस्तावेज बहुत भारी थे, और आंध्र प्रदेश राज्य में एनजीटी के पास जाने के लिए आवश्यक विशेषज्ञ और पेशेवर कानूनी सलाह उपलब्ध नहीं थी, इसलिए प्रासंगिक दस्तावेज प्राप्त करने, और दिल्ली में अधिवक्ता के साथ पत्राचार करने तथा अपील का मसौदा तैयार करने में कुछ विलंब हुआ।

30. पूर्वगामी निष्कर्षों को देखते हुए, इस न्यायालय की यह राय है कि एनजीटी के आक्षेपित आदेश को निरस्त किया जाना चाहिए और इसलिए इसे निरस्त किया जाता है। एनजीटी के समक्ष अपील दायर करने में हुए विलंब को एतद्वारा क्षमा किया जाता है; पक्षकार अब उपस्थित होंगे और अपील पर उसके गुण-दोष के आधार पर बहस करेंगे, जिसे बाद में कानून के अनुसार निस्तारित किया जाएगा। अपील स्वीकार की जाती है। लागत पर कोई आदेश नहीं होगा।”

(विशेष बल दिया गया)

15. उन्होंने इंदर सिंह बनाम मध्य प्रदेश राज्य के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के एक निर्णय पर भी भरोसा जताया, जो 2025 आईएनएससी 382 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया गया है:

“14. कानून के इस स्थापित सिद्धांत पर कोई विवाद नहीं हो सकता कि पर्याप्त कारण के बिना विलंब को क्षमा नहीं किया जा सकता है, लेकिन एक मुख्य पहलू जिसे ध्यान में रखा जाना चाहिए वह यह है कि,

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



यदि किसी विशेष मामले में, गुण-दोष की जांच की जानी है, तो इसे केवल मियाद के आधार पर समाप्त नहीं किया जाना चाहिए।

15. वर्तमान मामले में, प्रथम अपीलीय न्यायालय के समक्ष पुनर्विलोकन याचिका दायर करने में दो वर्ष और चार महीने का विलंब था और उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील पुनर्विलोकन याचिका के खारिज होने की तिथि यानी 30.09.2019 से लगभग एक वर्ष विलंबित थी। एक पल के लिए रुकते हुए, यह संकेत देना आवश्यक है कि वर्तमान मामले में, भूमि के स्वामित्व का विवाद निजी पक्षकारों के बीच नहीं है, बल्कि एक निजी पक्षकार और राज्य के बीच है। इसके अलावा, जब प्रश्नगत भूमि पर राज्य द्वारा कब्जा कर लिया गया था और युवा कल्याण विभाग तथा कलेक्ट्रेट को सार्वजनिक उद्देश्य के लिए आवंटित किया गया था और राज्य के कब्जे में बनी हुई है, तो राज्य के इस दावे को कि यह सरकारी भूमि है, संक्षेप में खारिज नहीं किया जा सकता है। हम मामले के अभिलेख का अवलोकन करने पर पाते हैं कि अपीलार्थी ने वास्तव में भूमि पर कब्जा लेने के लिए एक निष्पादन मामला दायर किया था, जो स्पष्ट रूप से इस स्वीकृत स्थिति को प्रदर्शित करेगा कि वह उस पर काबिज नहीं था। इस प्रकार, हमारी विचारित राय में, विभिन्न कारणों से मामले के स्वयं के गुण-दोष पर न्यायनिर्णयन की आवश्यकता होगी, अन्य बातों के साथ-साथ, तथ्य यह है कि वर्ष 1975-1976/1977-1978 में अपीलार्थी को भूमि आवंटित किए जाने के प्रारंभिक दावे के बाद एक नया जिला बनाया गया है। इसलिए, 01.10.2015 से गिने गए 1537 दिनों के विलंब में, यानी जब प्रथम अपीलीय न्यायालय ने वाद डिक्री किया था, पुनर्विलोकन याचिका दायर करने में दो वर्ष और चार महीने का विलंब शामिल है (जिसे प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा स्वयं विलंब के आधार पर खारिज कर दिया गया था) और उसके बाद उच्च न्यायालय के समक्ष द्वितीय अपील दायर करने के लिए लगभग एक वर्ष का विलंब, मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में, जो दोहराव की कीमत पर राज्य द्वारा सरकारी भूमि के रूप में दावा की गई और उसके कब्जे वाली भूमि से संबंधित हैं, हमें आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप न करने के लिए प्रेरित करते हैं। प्रासंगिक रूप से, प्रारंभ में विचारण न्यायालय द्वारा वाद खारिज कर दिया गया था, जिस निर्णय को प्रथम अपीलीय न्यायालय द्वारा उलट दिया गया था।

18. उपरोक्त घोषणाओं पर विचार करते हुए और समग्र परिप्रेक्ष्य में, हमारी राय है कि द्वितीय अपील गुण-दोष के आधार पर सुने जाने, प्रतिवाद किए जाने और तय किए जाने के योग्य है। हालांकि, प्रत्यर्थी को अब से और भविष्य में ऐसे मामलों में तत्परता प्रदर्शित करने के लिए चेतावनी दी जाती है, ऐसा न करने पर न्यायालय इतना उदार नहीं हो सकता है।”

(विशेष बल दिया गया)

16. अतः, माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि के सिद्धांत को देखते हुए, राज्य और उसकी संस्थाओं के विरुद्ध एक नरम दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए, और उनके द्वारा सामना की जाने वाली वास्तविक समस्या के कारण, विलंब को क्षमा करने के मामले में न्यायालय को एक नरम दृष्टिकोण अपनाना चाहिए। उन्होंने आगे तर्क दिया कि इस मामले में राजस्व प्राधिकारियों द्वारा विलंब से बचने के लिए गंभीर प्रयास किए गए थे, लेकिन इसके बावजूद, विलंब से बचा नहीं जा सका और यह सद्भावपूर्वक है तथा प्राधिकारियों की ओर से कोई जानबूझकर की गई चूक नहीं है।

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



17. विद्वान अधिवक्ता, श्री हेमंत कुमार पांडेय ने आगे तर्क दिया कि, यद्यपि राजस्व प्राधिकारियों द्वारा विलंब से बचने के लिए गंभीर प्रयास किए गए थे, लेकिन इसके बावजूद, विलंब से बचा नहीं जा सका और यह सद्भावपूर्वक है। प्राधिकारियों की ओर से कोई जानबूझकर की गई चूक नहीं है, बल्कि इसमें शामिल प्रक्रियाओं के कारण विलंब हुआ। उन्होंने आगे तर्क दिया कि राज्य एक बहु-कार्यात्मक निकाय है और इसे अपील दायर करने के लिए मंजूरी आदि प्राप्त करने के नियमों का पालन करना पड़ता है, इसलिए, इस अपील को प्रस्तुत करने के लिए राज्य को सर्वोच्च प्राधिकारियों से मंजूरी आदि प्राप्त करने में कुछ समय लगा। वर्तमान अपील दायर करने में हुए विलंब को माननीय सर्वोच्च न्यायालय के विभिन्न निर्णयों में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत के आधार पर कृपया क्षमा किया जाए।

18. अपीलार्थी के विद्वान अधिवक्ता ने तर्क दिया कि यदि विलंब को क्षमा नहीं किया जाता है, क्योंकि विलंब अपीलार्थी के नियंत्रण से बाहर के कारणों से हुआ था, तो यह अपीलार्थी के लिए बहुत कठोर होगा और इसके दूरगामी परिणाम होंगे। उन्होंने आगे तर्क दिया कि वर्तमान अपील प्रस्तुत करने में इस प्रकार हुआ विलंब प्रक्रियात्मक और अनजाने में था, इसलिए इसे क्षमा किया जा सकता है और वर्तमान अपील को गुण-दोष के आधार पर सुना जा सकता है।

विश्लेषण

19. इस वाद के तथ्यों को देखने से यह स्पष्ट होता है कि वादी (प्रत्यर्थी) ईट निर्माण के व्यवसाय में थे और प्रतिवादियों को आपूर्ति करते थे। प्रतिवादियों द्वारा 875/- रुपये प्रति हजार की दर से 35,000 सर्वोत्तम गुणवत्ता वाली ईंटों की आपूर्ति करने का आदेश दिया गया था। आदेश के अनुसार वादी ने 35,000 ईंटों की आपूर्ति की, हालांकि, प्रतिवादी संख्या 4 ने उन्हें अतिरिक्त 8,000 ईंटें प्रदान करने का निर्देश दिया और सभी ईंटें उपलब्ध कराई गईं तथा 07.03.1992 को प्रतिवादी संख्या 2 के कार्यालय में उनका परिवहन, उतराई और चट्टा लगाया गया। उस समय, प्रतिवादी संख्या 1 ने 15,024 ईंटें वापस कर दीं, जो मानक के अनुरूप नहीं थीं, हालांकि, प्रतिवादी ने 28,476 ईंटें रख लीं, जिनका मूल्य समझौते के अनुसार 24,966.50/- रुपये था और समझौते के अनुसार पूरा भुगतान तीन महीने के भीतर किया जाना था। तदनुसार भुगतान की अंतिम तिथि 27.06.1992 है, लेकिन प्रतिवादियों ने इसका भुगतान न करने का विकल्प चुना। चूंकि भुगतान नहीं किया गया था, इसलिए वादी ने प्रतिवादियों के विरुद्ध वसूली के लिए एक वाद प्रस्तुत किया जो सिविल वाद संख्या 108/1995 था, जिसे आदेश दिनांक 15.05.2000 द्वारा डिक्री कर दिया गया था।

20. इस आदेश को अपीलार्थियों द्वारा अपर जिला न्यायाधीश, लखीमपुर खीरी के समक्ष सिविल अपील दायर करके चुनौती दी गई थी और यह अपील लगभग 16 महीने से अधिक के विलंब के साथ दायर की गई थी तथा अपीलीय न्यायालय ने आदेश दिनांक 23.07.2003 द्वारा विलंब के आधार पर और साथ ही गुण-दोष के आधार पर अपील को निरस्त कर दिया था।

21. इस अपीलीय आदेश को लगभग 11 महीने के विलंब के बाद इस न्यायालय के समक्ष सिविल पुनरीक्षण संख्या 61/2004 प्रस्तुत करके चुनौती दी गई थी, जिसे पोषणीयता के आधार पर खारिज कर दिया गया था, हालांकि, अपीलार्थियों को किसी अन्य मंच पर जाने की स्वतंत्रता प्रदान की गई थी। तत्पश्चात अपीलार्थियों ने अपीलीय प्राधिकारी द्वारा पारित आदेश को वर्तमान द्वितीय अपील के माध्यम से चुनौती दी है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



22. इस न्यायालय की रजिस्ट्री ने इस अपील को दायर करने में 13 वर्ष, 3 महीने और 26 दिन (4957 दिन) का विलंब दर्शाया है।

23. यह तर्क दिया गया था कि गलत सलाह के कारण, 21.04.2004 को एक सिविल पुनरीक्षण दायर किया गया था और वह लंबित रहा तथा 18.09.2015 को खारिज कर दिया गया था। इसलिए इस अवधि का लाभ अपीलार्थियों को दिया जा सकता है और सिविल पुनरीक्षण के लंबित रहने के कारण हुए विलंब को विलंब में शामिल नहीं किया जाना चाहिए क्योंकि इस प्रकार हुआ विलंब विशुद्ध रूप से तकनीकी था। संबंधित वादों को दायर करने में हुए विलंब का विवरण इस प्रकार है:

वाद संख्या	दायर करने की तिथि	निस्तारण की तिथि	वाद दायर करने में अंतराल	प्रथम अपील के निर्णय से द्वितीय अपील दायर करने में अंतराल	पुनरीक्षण की अवधि के दौरान व्यतीत हुए दिन
मूल वाद संख्या 108/1995		15.05.2000	लागू नहीं	4957 दिन	4167 दिन
सिविल अपील संख्या 230/2001	19.12.2001	23.07.2003	583 दिन		
सिविल पुनरीक्षण संख्या 61/2004	21.04.2004	18.09.2015	273 दिन		
द्वितीय अपील	16.02.2017	लागू	517		

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



त्रुटिपूर्ण संख्या		नहीं	दिन		
87/2017					

पुनरीक्षण की अवधि घटाने के बाद बचे दिन:

प्रथम अपील के बाद द्वितीय अपील दायर करने में अंतराल है: 4957 दिन

घटाएं सिविल पुनरीक्षण के लंबित रहने के दौरान हुआ विलंब: - 4167 दिन

द्वितीय अपील दायर करने में बचा कुल अंतराल है: = 790 दिन

घटाएं द्वितीय अपील दायर करने की 90 दिनों की वैधानिक अवधि: = 700 दिन

24. इस अवधि का लाभ देने के बाद भी क्षमा किए जाने योग्य वास्तविक विलंब 700 दिन होगा। यदि यह न्यायालय सिविल पुनरीक्षण के अंतिम निर्णय से पहले व्यतीत हुई संपूर्ण अवधि पर विचार न भी करे, तब भी 517 दिनों का विलंब है, जिसके लिए विलंब क्षमा करने हेतु पर्याप्त स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।

25. मामले में विभिन्न कार्यवाहियों को दायर करने की तिथि दर्शाने वाला उपर्युक्त चार्ट यह स्पष्ट करता है कि अपीलार्थी अपने हितों की रक्षा करने में निरंतर लापरवाह और सुस्त रहा है। इस अपील के साथ दायर किया गया विलंब क्षमा करने का आवेदन कोई पर्याप्त कारण नहीं दर्शाता है। इसके अतिरिक्त, अपीलार्थी द्वारा इस प्रकार दाखिल किया गया हलफनामा कुछ और नहीं बल्कि केवल एक दिखावा है। विलंब को स्पष्ट करने का एक प्रयास किया गया है। हलफनामे की अंतर्वस्तु पर भरोसा नहीं किया जा सकता क्योंकि यह स्पष्ट है कि इसे केवल विलंब से पार पाने के लिए मनगढ़ंत रूप से तैयार किया गया है। हलफनामे में यह उल्लेख किया गया है कि प्रभागीय वन अधिकारी ने दिनांक 26.01.2016 को एक पत्र जारी किया था।

बिना सोचे-समझे और यह महसूस किए बिना कि 26.01.2016 को गणतंत्र दिवस था तथा उस तिथि को अनिवार्य रूप से सभी कार्यालय बंद रहते हैं, यह तिथि भर दी गई। गणतंत्र दिवस पर कोई भी कार्यालय खुला नहीं रहता है और न ही खोला जा सकता है।

यह स्पष्ट है कि हलफनामे में दिए गए कारण पूरी तरह से मनगढ़ंत हैं।

यदि इस मुद्दे को अलग भी रख दिया जाए, तो मूल वाद का निस्तारण दिनांक 15.05.2000 को किसी समझौते के आधार पर किया गया था। यदि अपीलार्थी इस आदेश से प्रतिकूल रूप से प्रभावित थे, तो उन्हें समय के भीतर इसे चुनौती देनी चाहिए थी, लेकिन इस आदेश को लगभग 583 दिनों के अंतराल/अवधि बीत जाने के बाद चुनौती दी गई और अपील भी विलंब के आधार पर निरस्त कर दी गई थी। फिर भी अपीलार्थी अपनी नींद से नहीं जागा और आगे लगभग 273 दिनों के अंतराल/अवधि बीत जाने के बाद

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



इसके विरुद्ध एक सिविल पुनरीक्षण दायर करके इसे चुनौती दी। यह मामला उच्च न्यायालय में लगभग 4167 दिनों तक लंबित रहा और उसके बाद इसे खारिज कर दिया गया। पुनरीक्षण के खारिज होने के बाद भी, जो कि अपीलार्थियों के अधिवक्ताओं के भली-भांति संज्ञान में था, वर्तमान द्वितीय अपील लगभग 517 दिनों के अंतराल/अवधि बीत जाने के बाद दायर की गई है। यह ऐसा मामला नहीं है कि कोई भी आदेश एकपक्षीय पारित किया गया था। अपीलार्थियों के अधिवक्ता प्रत्येक कार्यवाही पर अधीनस्थ न्यायालय के समक्ष उपस्थित थे।

विलंब क्षमा आवेदन में और पूरक हलफनामे के साथ दिए गए कारण पर्याप्त नहीं हैं। ये कारण बनावटी हैं। सिविल न्यायालय के आदेश को चुनौती देने में, अपीलीय न्यायालय के आदेश को चुनौती देने में और आगे इस द्वितीय अपील में सिविल न्यायालय के आदेश पर आक्षेप लगाने वाले सिविल पुनरीक्षण के निरस्त होने के बाद अत्यधिक विलंब हुआ है, जिसे विलंब क्षमा आवेदन में पर्याप्त रूप से स्पष्ट नहीं किया गया है।

26. मियाद के संबंध में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा प्रतिपादित विधि की विवेचना करने से पूर्व, यह न्यायालय मियाद अधिनियम की धारा 5 का अवलोकन करना चाहेगा, जो निम्नानुसार पठित है:

"5. कतिपय दशाओं में विहित काल का विस्तारण—कोई भी अपील या कोई भी आवेदन, जो सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) के आदेश XXI के नियमों में से किसी के अधीन आवेदन से भिन्न हो, विहित काल के पश्चात तब ग्रहण किया जा सकेगा जब अपीलार्थी या आवेदक न्यायालय को यह समाधान करा दे कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न करने या आवेदन न करने के लिए पर्याप्त कारण था।

स्पष्टीकरण—यह तथ्य कि अपीलार्थी या आवेदक विहित काल को अभिनिश्चित करने या उसकी गणना करने में उच्च न्यायालय के किसी आदेश, प्रविष्टि या निर्णय से भ्रम में पड़ गया था, इस धारा के अर्थ के भीतर पर्याप्त कारण हो सकेगा।"

(विशेष बल दिया गया)

27. मियाद अधिनियम की धारा 5 के सीधे पाठन से यह स्पष्ट रूप से प्रकट होता है कि विहित अवधि के बाद किसी अपील को तब ग्रहण किया जा सकता है, जब अपीलार्थी न्यायालय को यह समाधान करा दे कि उसके पास ऐसी अवधि के भीतर अपील न प्रस्तुत करने के लिए पर्याप्त कारण था।

28. 'पर्याप्त कारण' सिद्ध करने का भार उस अपीलार्थी पर होता है जो विलंब को क्षमा करने की मांग कर रहा है और उसे यह पर्याप्त कारण सिद्ध करना होगा कि न्यायालय की शरण में न आने के कारण वास्तविक और सद्भावपूर्वक हैं तथा लापरवाही से मुक्त हैं। इसमें कोई संदेह नहीं है कि इस पद को न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण के साथ निर्मित किया गया है ताकि किसी निर्दोष वादी को उसके नियंत्रण से बाहर की परिस्थितियों के लिए दंडित न किया जाए। हालांकि, न्यायालयों को घोर लापरवाही, जानबूझकर की गई निष्क्रियता या आकस्मिक उदासीनता को क्षमा नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करना इस

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सिद्धांत को कमजोर करेगा कि राज्य के हित में मुकदमों का अंत होना चाहिए और उस निश्चितता को अस्थिर कर देगा जिसे मियाद कानून सुरक्षित करना चाहता है।

29. विलंब की अवधि सामान्यतः विलंब को क्षमा करते समय कोई निर्णायक कारक नहीं होती है, बल्कि विलंब क्षमा चाहने वाले पक्षकार के आचरण को देखा जाना चाहिए। ऐसा करते समय यह देखा जाना चाहिए और न्यायालय को यह देखना चाहिए कि क्या पक्षकार ने विहित अवधि के दौरान कोई उचित विचार-विमर्श किया था। स्वाभाविक रूप से लंबा विलंब आवेदक पर सुसंगत, विश्वसनीय और ठोस स्पष्टीकरण प्रस्तुत करने का अधिक भारी बोझ डालता है। अपेक्षित प्रमाण विलंब के अनुपात में अधिक कड़ा हो जाता है। जितना अधिक समय व्यतीत हुआ होगा, उतना ही सुदृढ़ औचित्य प्रस्तुत किया जाना आवश्यक है।

30. पूर्व में जी. रामेगौड़ा, मेजर एवं अन्य बनाम विशेष भूमि अध्याप्ति अधिकारी, बेंगलूर, जो एससीसी (1988) 2 एससीसी 142 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय का यह दृष्टिकोण था कि विलंब को क्षमा करने से संबंधित मामलों में राज्य और उसकी संस्थाओं को एक निश्चित सीमा तक छूट दी जानी चाहिए, ताकि मियाद की कठोरता लोक हित के लिए हानिकारक न बने। राज्य तंत्र के कार्य करने के तरीके में अंतर्निहित जटिलताओं के कारण सरकार और सार्वजनिक प्राधिकारियों को एक निश्चित सीमा तक रियायत दी जानी चाहिए। चूंकि अंतर्निहित नौकरशाही जिस तरह से चलती है, उन्हें कुछ ढिलाई प्रदान की जानी चाहिए।

31. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चंद्र मनी (उपर्युक्त) के मामले में यह दोहराया कि विलंब क्षमा करने के मामलों में राज्य और उसकी संस्थाओं के प्रति कुछ रियायत दिखाई जानी चाहिए। न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि "राज्य समुदाय के सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करता है" और इसलिए सार्वजनिक प्राधिकारियों द्वारा दायर विलंब क्षमा आवेदनों पर विचार करते समय एक व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। न्यायालय ने आगे इस बात पर बल दिया कि मियाद की तकनीकी कमियों के परिणामस्वरूप लोक हित के साथ गंभीर अन्याय नहीं होना चाहिए, विशेषकर वहां जहां विलंब दुर्भावना से ग्रस्त न हो। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

"11. यह सर्वविदित और आम बात है कि इस न्यायालय में दायर किए जाने वाले 60 प्रतिशत से अधिक मामलों में — चाहे वे निजी पक्षकार द्वारा हों या राज्य द्वारा — मियाद समाप्त हो चुकी होती है और यह न्यायालय सामान्यतः गुण-दोष के आधार पर अपील का निर्णय करने के लिए कुछ पर्याप्त कारण पाते हुए विलंब क्षमा करने में उदार दृष्टिकोण अपनाता है। यह भी उतनी ही आम बात है कि राज्य सहित सभी वादियों के साथ एक जैसा व्यवहार किया जाता है और कानून को निष्पक्ष तरीके से लागू किया जाता है। जब राज्य एक आवेदक के रूप में विलंब क्षमा करने की प्रार्थना करता है, तो यह आम बात है कि अवैयक्तिक तंत्र और नोट-तैयार करने, फाइल आगे बढ़ाने तथा जिम्मेदारी दूसरों पर टालने की संस्कृति से ओतप्रोत विरासत में मिली नौकरशाही पद्धति के कारण, राज्य की ओर से हुए विलंब को समझना कम कठिन है, यद्यपि उसे स्वीकृति देना अधिक कठिन है, परंतु राज्य समुदाय के सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करता है। यह स्वतः सिद्ध है कि अधिकारियों/एजेंसियों द्वारा निर्णय कहावत के तौर पर धीमी गति से लिए जाते हैं और फाइलों को एक मेज से दूसरी मेज पर भेजने तथा उसे काफी समय तक मेज पर रखे रहने की बोझिल प्रक्रिया, जिससे विलंब होता है — चाहे वह जानबूझकर हो या अन्यथा — एक दिनचर्या है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही का अत्यधिक विलंब होना एक

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सामान्य विशेषता है। इसलिए, एक निश्चित मात्रा में छूट अनुज्ञेय है। यदि राज्य द्वारा लाई गई अपीलें ऐसी चूक के कारण खारिज हो जाती हैं, तो कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होता है, परंतु अंतिम विश्लेषण में जो प्रभावित होता है, वह लोक हित है। इसलिए 'पर्याप्त कारण' पद पर प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्ट करने के लिए तकनीकी खोज के बजाय न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण में व्यावहारिकता के साथ विचार किया जाना चाहिए। सरकारी परिस्थितियों के कामकाज के विशिष्ट और लाक्षणिक कारकों को संज्ञान में लिया जाना चाहिए और न्याय-उन्मुख प्रक्रिया में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। न्यायालय को मामलों का निस्तारण गुण-दोष के आधार पर करना चाहिए, जब तक कि मामला पूरी तरह से गुण-दोष विहीन न हो। निजी वादी के मुकाबले राज्य द्वारा प्रस्तुत कारण को निर्धारित करने के लिए सख्त मानकों को सिद्ध करने हेतु कोई अलग मानदंड निर्धारित नहीं किए जा सकते। उपयुक्त स्तर पर सरकार को कानूनी सेल का गठन करना चाहिए ताकि वे उन मामलों की जांच कर सकें कि क्या न्यायालयों द्वारा निर्णय के लिए कोई कानूनी सिद्धांत शामिल हैं या क्या मामलों में समायोजन की आवश्यकता है और उन्हें अधिकारियों को निर्णय लेने या समझौते के लिए उपयुक्त अनुमति देने के लिए अधिकृत करना चाहिए। अपील दायर करने के निर्णय की स्थिति में, अपील दायर करने के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा त्वरित कार्रवाई की जानी चाहिए और किसी भी चूक के लिए उसे व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। इसी तरह, राज्य को किसी व्यक्ति के समान पायदान पर नहीं रखा जा सकता है। कोई व्यक्ति हमेशा यह निर्णय लेने में त्वरित होगा कि वह अपील या आवेदन के माध्यम से उपचार प्राप्त करेगा या नहीं क्योंकि वह कानूनी रूप से पीड़ित व्यक्ति है, जबकि राज्य अपने अधिकारियों या सेवकों के माध्यम से काम करने वाला एक अवैयक्तिक तंत्र है। इस दृष्टिकोण से विचार करने पर, यह अभिनिर्धारित किया जाना चाहिए कि इस मामले में 109 दिनों के विलंब को स्पष्ट किया गया है और यह विलंब को क्षमा करने के लिए एक उपयुक्त मामला है।"

(विशेष जोर दिया गया)

32. तत्पश्चात, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विशेष तहसीलदार, भूमि अध्याप्ति बनाम के.वी. अयिसुम्मा, जो एससीसी (1996) 10 एससीसी 634 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि राज्य जनता के सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करता है, इसलिए उसकी ओर से हुए किसी भी विलंब को उसी चश्मे से नहीं देखा जाना चाहिए जिससे किसी निजी पक्षकार के विलंब को देखा जाता है। न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि राज्य या उसकी संस्थाओं के संबंध में प्रमाण के कड़े मानक अपनाना, जहां मामलों को त्वरित गति से संसाधित करने में कोई व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं लेता है, सार्वजनिक न्याय की गंभीर विफलता का कारण बनेगा। इस प्रकार, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि ऐसी परिस्थितियों में अपनाया जाने वाला सही दृष्टिकोण व्यावहारिक होना और प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्ट करने पर जोर दिए बिना विलंब को क्षमा करना है। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

"2. अब यह स्थापित कानून है कि जब विलंब सरकार की ओर से हुआ हो, तो दिन-प्रतिदिन के विलंब को स्पष्ट करना बहुत कठिन होगा। सरकारी कार्य का संचालन उन अधिकारियों द्वारा धीमी गति से किया जा रहा था, जिन्होंने विभिन्न स्तरों पर कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं दिखाई या उनकी कोई व्यक्तिगत रुचि नहीं थी। मामलों को त्वरित गति से संसाधित करने में कोई भी व्यक्तिगत जिम्मेदारी नहीं लेता है। वास्तव में कई चरणों में, वे निर्णय पर पहुंचने के लिए अपना स्वयं का समय लेते हैं। विलंब की ओर

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



ध्यान आकर्षित करने के बावजूद, वे अपील दायर करने में अंतिम निर्णय के लिए त्वरित कार्रवाई नहीं करते हैं। यह मामला ऐसे ही उदाहरणों में से एक है। यह सत्य है कि मियाद अधिनियम की धारा 5 न्यायालय के समाधान के लिए विलंब के स्पष्टीकरण की परिकल्पना करती है और मियाद अधिनियम के मामलों में राज्य और नागरिक के बीच कोई अंतर नहीं किया गया है। बहरहाल, प्रमाण के कड़े मानक अपनाने से सार्वजनिक न्याय की गंभीर विफलता होती है। इसके परिणामस्वरूप अपील दायर करने की प्रक्रिया में विलंब के कुशल प्रबंधन द्वारा सार्वजनिक शरारत होगी। न्यायालय का दृष्टिकोण व्यावहारिक होना चाहिए न कि पंडिती। उन परिस्थितियों में, अधीनस्थ न्यायाधीश ने सही रूप में सही दृष्टिकोण अपनाया था और इस न्यायालय द्वारा प्रतिपादित कानून के आलोक में पुनर्विलोकन आवेदन दायर करने में प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्ट करने पर जोर दिए बिना विलंब को क्षमा कर दिया था। उच्च न्यायालय का आदेश निरस्त करने का निर्णय सही नहीं था। विलंब को सही रूप में क्षमा किया गया था।"

(विशेष जोर दिया गया)

33. फिर नागालैंड राज्य बनाम लिपोक एओ, जो एससीसी (2005) 3 एससीसी 752 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारी निर्णय लेने में विलंब के कारण होने वाली नौकरशाही की वास्तविकताओं को स्वीकार किया। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि इस तथ्य को सम्मान दिया जाना चाहिए कि सरकारी कार्रवाइयां "उन अधिकारियों द्वारा संचालित की जाती हैं जो अपने दम पर कार्य नहीं कर सकते हैं बल्कि उन्हें विभिन्न स्तरों पर स्वीकृतियां प्राप्त करनी होती हैं," और इस प्रकार, विलंब का तत्व लगभग "सरकारी निर्णय लेने की प्रक्रिया में अंतर्निहित" होता है। तदनुसार, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि सरकारी परिस्थितियों के कामकाज के विशिष्ट और लाक्षणिक कारकों के कारण न्यायालयों द्वारा विलंब को क्षमा करने से संबंधित मामलों में व्यावहारिक और न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण अपनाए जाने की आवश्यकता है। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

"13. अनुभव दर्शाता है कि एक अवैयक्तिक तंत्र (मामले का कोई भी प्रभारी उस निर्णय से सीधे प्रभावित या आहत नहीं होता है जिसके विरुद्ध अपील की जानी है) और नोट-तैयार करने, फाइल आगे बढ़ाने तथा जिम्मेदारी दूसरों पर टालने की संस्कृति से ओतप्रोत विरासत में मिली नौकरशाही पद्धति के कारण, उसकी ओर से हुए विलंब को समझना कम कठिन है, यद्यपि उसे स्वीकृति देना अधिक कठिन है। राज्य, जो समुदाय के सामूहिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करता है, एक अस्वीकार्य-वादी दर्जे का हकदार नहीं है। इसलिए, न्यायालयों को पर्याप्त कारण पद की व्याख्या के दौरान प्रावधान की भावना और दर्शन से अवगत होना होगा। अपील प्रस्तुत करने में विलंब की तकनीकी कमियों के कारण मामले को खारिज करने के बजाय गुण-दोष के आधार पर निर्णय को प्राथमिकता दी जाती है। तदनुसार विलंब को क्षमा किया गया, आदेश को निरस्त किया गया और पक्षकारों को सुनवाई का अवसर प्रदान करने के बाद मामले को गुण-दोष के आधार पर निस्तारण के लिए उच्च न्यायालय को वापस भेज दिया गया। प्रभा बनाम राम प्रकाश कालरा [1987 सप्लीमेंट एससीसी 339] में इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया था कि न्यायालय को विलंब क्षमा करने के आवेदन को खारिज करने में न्याय-विरोधी दृष्टिकोण नहीं अपनाना चाहिए। अपील स्वीकार की गई, विलंब को क्षमा किया गया और मामले को कानून के अनुसार त्वरित निस्तारण के लिए वापस भेज दिया गया।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



15. यह स्वतः सिद्ध है कि अधिकारियों/एजेंसियों द्वारा निर्णय कहावत के तौर पर धीमी गति से लिए जाते हैं और फाइलों को एक मेज से दूसरी मेज पर भेजने तथा उसे काफी समय तक मेज पर रखे रहने की बोझिल प्रक्रिया, जिससे विलंब होता है — चाहे वह जानबूझकर हो या अन्यथा — एक दिनचर्या है। निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही का अत्यधिक विलंब होना एक सामान्य विशेषता है। इसलिए, एक निश्चित मात्रा में छूट अनुज्ञेय है। यदि राज्य द्वारा लाई गई अपीलें ऐसी चूक के कारण खारिज हो जाती हैं, तो कोई व्यक्ति व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होता है, परंतु अंतिम विश्लेषण में जो प्रभावित होता है, वह लोक हित है। इसलिए 'पर्याप्त कारण' पद पर प्रत्येक दिन के विलंब को स्पष्ट करने के लिए तकनीकी खोज के बजाय न्याय-उन्मुख दृष्टिकोण में व्यावहारिकता के साथ विचार किया जाना चाहिए। सरकारी परिस्थितियों के कामकाज के विशिष्ट और लाक्षणिक कारकों को संज्ञान में लिया जाना चाहिए और न्याय-उन्मुख प्रक्रिया में व्यावहारिक दृष्टिकोण अपनाने की आवश्यकता है। न्यायालय को मामलों का निस्तारण गुण-दोष के आधार पर करना चाहिए, जब तक कि मामला पूरी तरह से गुण-दोष विहीन न हो। निजी वादी के मुकाबले राज्य द्वारा प्रस्तुत कारण को निर्धारित करने के लिए सख्त मानकों को सिद्ध करने हेतु कोई अलग मानदंड निर्धारित नहीं किए जा सकते। उपयुक्त स्तर पर सरकार को कानूनी सेल का गठन करना चाहिए ताकि वे उन मामलों की जांच कर सकें कि क्या न्यायालयों द्वारा निर्णय के लिए कोई कानूनी सिद्धांत शामिल हैं या क्या मामलों में समायोजन की आवश्यकता है और उन्हें अधिकारियों को निर्णय लेने या समझौते के लिए उपयुक्त अनुमति देने के लिए अधिकृत करना चाहिए। अपील दायर करने के निर्णय की स्थिति में, अपील दायर करने के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा त्वरित कार्रवाई की जानी चाहिए और किसी भी चूक के लिए उसे व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। इसी तरह, राज्य को किसी व्यक्ति के समान पायदान पर नहीं रखा जा सकता है। कोई व्यक्ति हमेशा यह निर्णय लेने में त्वरित होगा कि वह अपील या आवेदन के माध्यम से उपचार प्राप्त करेगा या नहीं क्योंकि वह कानूनी रूप से पीड़ित व्यक्ति है, जबकि राज्य अपने अधिकारियों या सेवकों के माध्यम से काम करने वाला एक अवैयक्तिक तंत्र है।"

(विशेष बल दिया गया)

34. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने चंद्र मनी(उपर्युक्त) और लिपोक एओ(उपर्युक्त) के मामले में स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया कि मियाद अधिनियम की धारा 5 के तहत विलंब को क्षमा करने के प्रयोजनों के लिए राज्य या उसकी किसी भी संस्था को किसी निजी पक्षकार के समान पायदान पर नहीं रखा जा सकता है। न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि कोई व्यक्ति हमेशा यह निर्णय लेने में त्वरित होगा कि वह अपील या आवेदन के माध्यम से उपचार प्राप्त करेगा या नहीं क्योंकि वह कानूनी रूप से पीड़ित व्यक्ति है, जबकि राज्य अपने अधिकारियों या सेवकों के माध्यम से काम करने वाला एक अवैयक्तिक तंत्र है, जो नौकरशाही पद्धति से बंधा हुआ है। इस प्रकार, न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यद्यपि कानून के समक्ष समानता सर्वोपरि है, तथापि समानता संस्थागत वास्तविकताओं को स्वीकार करने से इनकार करने का आदेश नहीं देती है।

35. हालांकि, जो बात समान रूप से ध्यान देने योग्य है वह यह है कि इस न्यायालय की चंद्र मनी(उपर्युक्त) और लिपोक एओ(उपर्युक्त) के मामलों की उक्त टिप्पणियों के साथ राज्य और उसकी सभी संस्थाओं को एक स्पष्ट संदेश भी दिया गया था, कि एक धीमी और सुस्त कार्यप्रणाली हर समय जारी नहीं रह सकती है। राज्य और सभी सार्वजनिक प्राधिकारियों को कानूनी सेल का गठन करने का

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



निर्देश दिया गया था ताकि वे उन मामलों की जांच कर सकें कि क्या न्यायालयों द्वारा निर्णय के लिए कोई कानूनी सिद्धांत शामिल हैं, यदि नहीं, तो न्यायालयों के समक्ष विलंबित मामलों को दोबारा उठाने के बजाय समझौते पर पहुंचने की दिशा में प्रयास किया जाना चाहिए। न्यायालय ने आगे यह टिप्पणी की कि जहां मामले में विलंब के बावजूद अपील या आवेदन दायर करने की आवश्यकता होती है, वहां अपील दायर करने के लिए जिम्मेदार अधिकारी द्वारा त्वरित कार्रवाई की जानी चाहिए और किसी भी चूक के लिए उसे व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए।

36. एक लंबी अवधि से, न्यायालय ने उस सुस्त और उदासीन तरीके को देखा है जिससे राज्य और उसकी संस्थाओं द्वारा अपीलें दायर की जाती हैं। टालमटोल की रणनीति और नौकरशाही दृष्टिकोण का ऐसा आचरण आज की दिनचर्या बन गया है। राज्य द्वारा दायर किया जाने वाला लगभग हर दूसरा मामला विलंब क्षमा करने के आवेदन के साथ होता है। इसके बाद ही सर्वोच्च न्यायालय ने उससे भिन्न रुख अपनाया जो पहले अपनाया गया था।

37. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पोस्टमास्टर जनरल एवं अन्य बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड एवं अन्य, जो (2012) 3 एससीसी 563 में रिपोर्ट किया गया है, में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

“27. यह विवाद में नहीं है कि संबंधित व्यक्ति इस न्यायालय में विशेष अनुमति याचिका दायर करके मामले को आगे बढ़ाने के लिए मियाद की विहित अवधि सहित शामिल मुद्दों से भली-भांति परिचित या अवगत थे। वे यह दावा नहीं कर सकते कि उनके लिए मियाद की एक अलग अवधि है जब विभाग के पास न्यायालय की कार्यवाहियों से परिचित सक्षम व्यक्ति मौजूद थे। उचित और स्वीकार्य स्पष्टीकरण के अभाव में, हम एक प्रश्न उठा रहे हैं कि केवल इसलिए कि सरकार या सरकार का कोई अंग हमारे समक्ष एक पक्षकार है, विलंब को यांत्रिक रूप से क्यों क्षमा किया जाना चाहिए।

28. यद्यपि हम इस तथ्य के प्रति सचेत हैं कि विलंब क्षमा करने के मामले में जब कोई घोर लापरवाही या जानबूझकर की गई निष्क्रियता या सद्भावना की कमी नहीं थी, तो वास्तविक न्याय को बढ़ावा देने के लिए एक उदार छूट अपनाई जानी चाहिए, हमारी यह राय है कि तथ्यों और परिस्थितियों में, विभाग विभिन्न पूर्ववर्ती निर्णयों का लाभ नहीं उठा सकता है। अवैयक्तिक तंत्र और कई नोट तैयार करने की विरासत में मिली नौकरशाही पद्धति के कारण किए जाने वाले दावे को उपयोग की जा रही और उपलब्ध आधुनिक तकनीकों को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है। मियाद का कानून निस्संदेह सरकार सहित सभी को समान रूप से बांधता है।

29. हमारी राय में, सभी सरकारी निकायों, उनकी एजेंसियों और संस्थाओं को यह सूचित करने का यह सही समय है कि जब तक उनके पास विलंब के लिए उचित और स्वीकार्य स्पष्टीकरण न हो और सद्भावपूर्वक प्रयास न किया गया हो, तब तक इस सामान्य स्पष्टीकरण को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की अत्यधिक मात्रा के कारण फाइल कई महीनों/वर्षों तक लंबित रही। सरकारी विभागों का यह विशेष दायित्व है कि वे यह सुनिश्चित करें कि वे अपने कर्तव्यों का पालन तत्परता और प्रतिबद्धता के साथ करें। विलंब को क्षमा करना एक अपवाद है और इसका उपयोग सरकारी विभागों के लिए एक प्रत्याशित लाभ के रूप में नहीं किया जाना चाहिए।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



कानून सभी को एक ही रोशनी में आश्रय देता है और इसे कुछ लोगों के लाभ के लिए घुमाया नहीं जाना चाहिए।”

(विशेष बल दिया गया)

38. इस निर्णय में, माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि किसी भी विलंब को यांत्रिक रूप से क्षमा नहीं किया जा सकता है। अवैयक्तिक तंत्र और कई नोट तैयार करने की विरासत में मिली नौकरशाही पद्धति के कारण हुए विलंब को उपयोग की जा रही और उपलब्ध आधुनिक तकनीकों को देखते हुए स्वीकार नहीं किया जा सकता है। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी स्पष्ट रूप से अभिनिर्धारित किया है कि मियाद का कानून निस्संदेह सरकार सहित सभी को समान रूप से बांधता है। विलंब को क्षमा करना एक अपवाद है और इसका उपयोग सरकारी विभागों के लिए एक लाभ के रूप में नहीं किया जाना चाहिए।

39. उपर्युक्त से, यह स्पष्ट है कि पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के निर्णय से पूर्व, विलंब क्षमा करने के मामलों में राज्य और उसकी संस्थाओं के कामकाज की विशिष्ट प्रकृति के कारण उनके प्रति न्यायिक सहानुभूति का दृष्टिकोण अपनाया जाता था। साथ ही, इसके विपरीत विचार भी अस्तित्व में थे जैसे कि पश्चिम बंगाल राज्य बनाम द एडमिनिस्ट्रेटर, हावड़ा म्युनिसिपैलिटी, जो [1972] 2 एससीआर 874 में रिपोर्ट किया गया है, और लंका वेंकटेश्वरलू बनाम आंध्र प्रदेश राज्य, जो (2011) 4 एससीसी 363 में रिपोर्ट किया गया है, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया था कि चाहे वादी कोई सरकारी इकाई हो या कोई निजी व्यक्ति, मियाद के प्रावधान समान रूप से लागू होंगे, और न्यायालयों द्वारा दिखाई गई कोई भी छूट भी समान रहेगी।

40. मध्य प्रदेश राज्य एवं अन्य बनाम भेरूलाल, जो (2020) 10 एससीसी 654 में रिपोर्ट किया गया है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने उस नियमित तरीके पर अपनी गहरी पीड़ा व्यक्त की जिससे राज्य और उसकी संस्थाएं नौकरशाही की अक्षमताओं के बहाने विलंब क्षमा करने की मांग करती रहती हैं। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि पूर्ववर्ती निर्णय जिन्होंने ऐसी अक्षमताओं के लिए कुछ हद तक छूट प्रदान की थी, वे अब विलंब क्षमा करने के संबंध में कानून की सही स्थिति को प्रतिबिंबित नहीं करते हैं। यह आगे अभिनिर्धारित किया गया कि पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) के निर्णय को देखते हुए, दस्तावेजों की अनुपलब्धता या नौकरशाही प्रक्रिया के माध्यम से उन्हें व्यवस्थित करने की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप हुआ कोई भी विलंब अब ऐसे विलंब को क्षमा करने के लिए एक स्वीकार्य "कारण या बहाना" नहीं है।

41. इसी तरह का दृष्टिकोण माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा महाराष्ट्र सरकार (जल संसाधन विभाग) प्रतिनिधित्व अधिशासी अभियंता बनाम बोर्से ब्रदर्स इंजीनियर्स एंड कॉन्ट्रैक्टर्स प्राइवेट लिमिटेड, जो (2021) 6 एससीसी 460 में रिपोर्ट किया गया है, में दोहराया गया था, जिसमें न्यायालय ने पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) पर भरोसा जताते हुए अभिनिर्धारित किया कि केवल इसलिए कि सरकार शामिल है, विलंब क्षमा करने के लिए एक अलग पैमाना निर्धारित नहीं किया जा सकता है। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



“59. इसी तरह, केवल इसलिए कि सरकार शामिल है, विलंब क्षमा करने के लिए एक अलग पैमाना निर्धारित नहीं किया जा सकता है। इसे पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया (इंडिया) लिमिटेड में स्पष्ट रूप से कहा गया था।”

(विशेष बल दिया गया)

42. ओडिशा राज्य एवं अन्य बनाम सुनंदा महाकुड़ा, जो (2021) 11 एससीसी 560 में रिपोर्ट किया गया है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि विलंब क्षमा करने के मामलों में नौकरशाही की अक्षमताओं के कारण राज्य और उसकी संस्थाओं को पहले जो छूट मिलती थी, वह तकनीकी प्रगति और न्यायशास्त्र में आए बदलाव को देखते हुए अब उपलब्ध नहीं है, जैसा कि पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) में स्पष्ट किया गया है। न्यायालय ने यह टिप्पणी की कि मियाद अधिनियम की धारा 5 के तहत ऐसा कोई मामला स्थापित नहीं माना जा सकता जहां उस अवधि के संबंध में कोई कारण या बहाना न दिया गया हो जिसके लिए क्षमा मांगी जा रही है।

43. इसी प्रकार, उत्तर प्रदेश राज्य बनाम सभा नारायण, जो (2022) 9 एससीसी 266 में रिपोर्ट किया गया है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने एक बार फिर राज्य और उसकी संस्थाओं की इस प्रवृत्ति की निंदा की कि वे इस धारणा पर आगे बढ़ते हैं कि वे अपनी सुविधानुसार और स्वेच्छा से न्यायालयों की शरण में आ सकते हैं, और कानून द्वारा विहित मियाद की अवधि की उपेक्षा करते हैं, मानो मियाद का कानून उन पर लागू ही नहीं होता। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि आंतरिक कार्यात्मक अक्षमताओं के कारण सरकार/सार्वजनिक प्राधिकारियों को एक समय पर जो छूट दी जाती थी, वह अब नियम नहीं रह गई है, विशेष रूप से पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) के निर्णय के बाद। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

“3. हमने बार-बार राज्य सरकारों और सार्वजनिक प्राधिकारियों को ऐसा दृष्टिकोण अपनाने के लिए हतोत्साहित किया है कि वे जब चाहें सर्वोच्च न्यायालय में आ सकते हैं, और कानूनों द्वारा विहित मियाद की अवधि की उपेक्षा करते हैं, मानो मियाद का कानून उन पर लागू ही नहीं होता। इस संबंध में, मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल [मध्य प्रदेश राज्य बनाम भेरूलाल, (2020) 10 एससीसी 654 : (2021) 1 एससीसी (क्रिमिनल) 117 : (2021) 1 एससीसी (सिविल) 101 : (2021) 1 एससीसी (एल एंड एस) 84] और ओडिशा राज्य बनाम सुनंदा महाकुड़ा [ओडिशा राज्य बनाम सुनंदा महाकुड़ा, (2021) 11 एससीसी 560 : (2022) 1 एससीसी (आपराधिक) 300 : (2022) 2 एससीसी (एल एंड एस) 393] में हमारे निर्णयों का संदर्भ देना पर्याप्त है। आंतरिक अक्षमताओं के कारण सरकार/सार्वजनिक प्राधिकारियों को जो छूट दी गई थी, वह इस न्यायालय के कुछ ऐसे आदेशों का परिणाम थी जो उस समय आए थे जब तकनीक विकसित नहीं हुई थी और इस प्रकार, अधिक ढिलाई दिखाई गई थी। यह स्थिति अब प्रचलित नहीं है और वर्तमान कानूनी स्थिति को इस न्यायालय के निर्णय द्वारा पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड [पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड, (2012) 3 एससीसी 563 : (2012) 2 एससीसी (सिविल) 327 : (2012) 2 एससीसी (आपराधिक) 580 : (2012) 1 एससीसी (एल एंड एस) 649] में स्पष्ट किया गया है। इसके बावजूद, सरकार और सार्वजनिक प्राधिकारियों के दृष्टिकोण में बहुत कम बदलाव दिखाई देता है।”

(विशेष जोर दिया गया)

“अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।”



44. भारत संघ बनाम जहांगीर बायरामजी जीजीभाँय, जो 2024 एससीसी ऑनलाइन एससी 489 में रिपोर्ट किया गया है, में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब किसी अपील या आवेदन, जैसी भी स्थिति हो, को दायर करने में हुए अत्यधिक विलंब को क्षमा करने की बात आती है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वादी कोई निजी पक्षकार है या कोई राज्य या भारत संघ। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब तक विभाग के पास विलंब के लिए उचित और स्वीकार्य कारण न हो और सद्भावपूर्वक प्रयास न किया गया हो, तब तक इस सामान्य स्पष्टीकरण को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की अत्यधिक मात्रा के कारण फाइल कई महीनों/वर्षों तक लंबित रही। प्रासंगिक टिप्पणियां निम्नानुसार पठित हैं: -

"25. जब 12 वर्ष से अधिक के अत्यधिक विलंब को क्षमा करने की बात आती है, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता कि वादी कोई निजी पक्षकार है या कोई राज्य या भारत संघ। यदि वादी कानून के प्रासंगिक प्रावधानों के तहत विहित समय बीत जाने के बहुत बाद न्यायालय में आने का विकल्प चुनता है, तो वह पलटकर यह नहीं कह सकता कि विलंब को क्षमा करने से किसी भी पक्षकार पर कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा। पक्षकारों के बीच यह वाद कुछ हद तक 1981 में शुरू हुआ था। हम 2024 में हैं। लगभग 43 वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। हालांकि, आज तक प्रत्यर्थी अपनी डिक्री के लाभ प्राप्त करने में सक्षम नहीं हो पाया है। यदि हम 12 वर्ष और 158 दिनों के विलंब को क्षमा करते हैं और प्रत्यर्थी को एक बार फिर कानूनी कार्यवाहियों के झंझटों से गुजरने के लिए कहते हैं, तो यह न्याय का उपहास होगा।

27. हमारी यह राय है कि मियाद का प्रश्न केवल एक तकनीकी विचार नहीं है। मियाद के नियम सुदृढ़ लोक नीति के सिद्धांतों और साम्या के सिद्धांतों पर आधारित हैं। हमें प्रत्यर्थी के सिर पर 'डेमोकल्स की तलवार' अनिश्चित काल के लिए लटकती हुई नहीं छोड़नी चाहिए जिसे अपीलार्थियों की सनक और कल्पनाओं पर तय किया जाए।

30. पोस्टमास्टर जनरल बनाम लिविंग मीडिया इंडिया लिमिटेड, (2012) 3 एससीसी 563 में, इस न्यायालय ने विशेष अनुमति याचिका दायर करने में 427 दिनों के विलंब को क्षमा करने के आवेदन को खारिज करते हुए अभिनिर्धारित किया कि विलंब को क्षमा करना कोई अपवाद नहीं है और इसका उपयोग सरकारी विभागों के लिए एक प्रत्याशित लाभ के रूप में नहीं किया जाना चाहिए। उस मामले में, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि जब तक विभाग के पास विलंब के लिए उचित और स्वीकार्य कारण न हो और सद्भावपूर्वक प्रयास न किया गया हो, तब तक इस सामान्य स्पष्टीकरण को स्वीकार करने की कोई आवश्यकता नहीं है कि प्रक्रिया में प्रक्रियात्मक लालफीताशाही की अत्यधिक मात्रा के कारण फाइल कई महीनों/वर्षों तक लंबित रही, इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है। [...]"

(विशेष बल दिया गया)

45. इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया था कि जब मियाद अधिनियम की धारा 5 की बात आती है, तो विलंब को उदारता के मामले के रूप में क्षमा नहीं किया जाना चाहिए। वास्तविक न्याय प्रदान करना विपक्षी पक्षकार पर प्रतिकूल प्रभाव डालने का कोई खुला पास नहीं है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



विलंब को क्षमा करने के लिए महत्वपूर्ण परीक्षण यह है कि जो पक्षकार ऐसी क्षमा के लिए प्रार्थना कर रहा है, वह यह सिद्ध करे कि वह मामले को आगे बढ़ाने में उचित रूप से तत्पर था।

46. एक बार जब राज्य वाद लड़ने का विकल्प चुनता है, तो उसे उन्हीं जिम्मेदारियों को उठाना चाहिए और उन्हीं सीमाओं का पालन करना चाहिए जो प्रत्येक वादी को बांधती हैं। राज्य को इस प्रत्यक्ष बहाने पर विलंब के परिणामों से बचने की अनुमति देना कि गलती व्यक्तिगत अधिकारियों की थी, मियाद कानूनों की कठोरता को कम करने और उनके मूल उद्देश्य को कमजोर करने के समान होगा। ऐसा दृष्टिकोण न केवल निजी पक्षकारों पर राज्य को अन्यायपूर्ण रूप से विशेषाधिकार देगा बल्कि प्रशासन के भीतर उदासीनता और गैर-जिम्मेदारी की संस्कृति को भी कायम रखेगा।

47. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने शिवम्मा (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा बनाम कर्नाटक हाउसिंग बोर्ड एवं अन्य, जो मैनु/एससी/1262/2025 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में पारित नवीनतम निर्णय में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया है:

"261. इस प्रकार, उपर्युक्त कारणों से, उच्च न्यायालय का आक्षेपित आदेश निरस्त किए जाने योग्य है। इससे पहले कि हम इस निर्णय को समाप्त करने की ओर बढ़ें, हम यह पूरी तरह से स्पष्ट करना उचित समझते हैं कि प्रशासनिक सुस्ती और शिथिलता कभी भी विलंब क्षमा करने के लिए पर्याप्त आधार के रूप में मान्य नहीं हो सकती है, और हम सभी उच्च न्यायालयों को एक सशक्त संदेश देना चाहते हैं कि तुच्छ और सतही आधारों पर विलंब को तब तक क्षमा नहीं किया जाएगा, जब तक कि पर्याप्त कारण का एक उचित मामला स्थापित न हो जाए, जिसमें राज्य-तंत्र यह साबित करने में सक्षम हो कि उसने सद्भावना के साथ कार्य किया और पूरे समय सतर्क रहा। जैसा कि प्रसिद्ध रूप से कहा गया है, प्रक्रिया न्याय की चेरी है। लेकिन न्यायालयों, और विशेष रूप से संवैधानिक न्यायालयों को, वाद लड़ने वाली राज्य एजेंसी के लिए प्रक्रिया से नहीं बचना चाहिए, जो अपने स्वयं के सुस्त रवैये के कारण वाद आगे बढ़ाने में मियाद के अवरोधों को समान रूप से भुगतती है।

262. उच्च न्यायालयों को राज्य प्राधिकारियों या उसकी संस्थाओं के ऐसे उदासीन रवैये को वैध रूप नहीं देना चाहिए, और यदि विलंब क्षमा चाहने वाला पक्षकार कोई राज्य-प्राधिकारी है, तो उन्हें अत्यधिक सतर्क रहना चाहिए। उन्हें राज्य की शिथिलता और सुस्ती का सरोगेट नहीं बनना चाहिए। संवैधानिक न्यायालयों को एक निजी वादी की उदासीनता और पीड़ा के प्रति सचेत होना चाहिए। वादियों को निरंतर मुकदमों की ऐसी स्थितियों में नहीं डाला जा सकता, जिसमें उनकी डिक्री या अनुकूल आदेशों के लाभ बाद के चरणों में विफल हो जाएं। हमें इस सतत प्रवृत्ति को दोहराने में अत्यंत पीड़ा हो रही है, और हम सभी उच्च न्यायालयों को सचेत करते हैं कि वे अत्यधिक विलंब वाले मामलों को तब तक दोबारा न खोलें, जब तक कि पर्याप्त कारण मौजूद न हो, क्योंकि ऐसा करके न्यायालय केवल घाव पर नमक छिड़कने का काम करते हैं, विशेष रूप से सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 100 के तहत अपीलों में, जिसमें उनका अधिकार क्षेत्र पहले से ही कानून के प्रश्नों तक सीमित है।

263. वाद को अंतिमता प्राप्त करने के लिए एक व्यापक गुंजाइश बनाए रखने हेतु मियाद की अवधियां विहित की गई हैं। न्यायिक समय के महत्व से अधिक, जो बात हमें चिंतित करती है वह सीमित साधनों वाले वादी की दुर्दशा है, जिसे एक विशाल राज्य और उसके विस्तृत तथा कभी न खत्म होने वाले तामझाम के खिलाफ मुकाबला करना पड़ता है। ऐसे मुकदमों को शुरुआत में ही निस्तारित किया जाना

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



चाहिए, क्योंकि, मान लीजिए कि राज्य के खिलाफ वाद लड़ने वाला कोई पक्षकार, चाहे जो भी कारण हो, वर्तमान मामले के विपरीत, अपील में विलंब क्षमा करने का विरोध करने में असमर्थ रहता है, तो यह मुकदमेबाजी के एक और दौर के लिए वाद को दोबारा खोल देता है, और ऐसे वादी को फिर से बेचैन छोड़ देता है। अंतरात्मा की अदालत होने के नाते, यह हमारा दायित्व है कि हम यह सुनिश्चित करें कि किसी वादी को न्याय पाने के लिए दर-दर न भटकना पड़े।

264. किसी भी वादी को इतना सुस्त और उदासीन होने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, और न्यायालयों द्वारा कानून की प्रक्रिया का दुरुपयोग करने की अनुमति तो बिल्कुल भी नहीं दी जानी चाहिए।”

(विशेष बल दिया गया)

48. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने इस निर्णय में स्पष्ट रूप से कहा है कि प्रशासनिक सुस्ती और शिथिलता कभी भी विलंब क्षमा करने के लिए पर्याप्त आधार के रूप में मान्य नहीं हो सकती है, और इसे तुच्छ और सतही आधारों पर तब तक क्षमा नहीं किया जाएगा, जब तक कि पर्याप्त कारण का एक उचित मामला स्थापित न हो जाए, जिसमें राज्य-तंत्र यह सिद्ध करने में सक्षम हो कि उन्होंने सद्भावना के साथ कार्य किया और पूरे वाद के दौरान सतर्क रहे तथा किसी अप्रत्याशित कारण से अपील दायर नहीं की जा सकी, तभी विलंब को क्षमा किया जा सकता है।

49. इस निर्णय में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे अभिनिर्धारित किया है कि कोई भी न्यायालय, विशेष रूप से एक संवैधानिक न्यायालय, वाद लड़ने वाले राज्य और उसकी संस्थाओं पर लागू होने वाली प्रक्रिया से नहीं बचेगा, जिन्हें मियाद अधिनियम के तहत आवेदनों की बात आने पर अन्य वादियों के समान ही पायदान पर रखा जाना चाहिए।

50. विधिक प्रतिनिधियों(उपर्युक्त) द्वारा शिवम्मा (मृतक) के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय द्वारा पारित नवीनतम निर्णय में प्रतिपादित विधि के सिद्धांत के आलोक में, यह स्पष्ट है कि मियाद कानून स्वयं लोक नीति पर आधारित हैं, जैसा कि इस निर्णय के पूर्ववर्ती पैराग्राफों में पहले ही चर्चा की जा चुकी है, यह इस सिद्धांत पर आधारित है कि 'राज्य के हित में मुकदमों का अंत होना चाहिए' अर्थात् "यह सामान्य कल्याण के लिए है कि मुकदमों की एक अवधि तय की जाए"। इसलिए, बार-बार होने वाली चूकों को क्षमा करने की तुलना में समय पर सरकारी कार्रवाई से लोक हित बेहतर ढंग से पूरा होता है। राज्य एक ही समय में जनता के हित का प्रतिनिधित्व करने की मांग नहीं कर सकता और फिर भी मियाद की अवधियों को समाप्त होने देकर उस हित की रक्षा करने में लगातार विफल नहीं हो सकता।

51. लोक हित को बढ़ावा देने का सबसे अच्छा उपाय सरकारी कामकाज में दक्षता और तत्परता सुनिश्चित करना है, न कि उसकी चूकों को एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में क्षमा करना। इस प्रकार, विलंब क्षमा करने के मामलों में राज्य या उसकी किसी भी संस्था के प्रति उदार झुकाव का दृष्टिकोण नहीं अपनाया जा सकता है। केवल इस उपधारणा के आधार पर कि यदि विलंब को क्षमा नहीं किया गया, तो लोक हित को किसी गुण-दोष वाले मामले के खारिज होने का जोखिम उठाना पड़ेगा। लोक हित सरकारी उदासीनता को क्षमा करने में नहीं, बल्कि दक्षता, जिम्मेदारी और समय पर कार्रवाई करने के लिए विवश करने में निहित है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



52. सरकार के लिए एक सामान्य प्रक्रिया के रूप में विलंब को क्षमा करने की अनुमति देने से अक्षमता को संस्थागत रूप देने का हानिकारक प्रभाव पड़ेगा। यह वास्तव में सुस्ती को प्रोत्साहित करेगा और एक ऐसी संस्कृति को बढ़ावा देगा जहां विलंब के लिए जवाबदेही समाप्त हो जाती है। यदि राज्य को यह आश्वासन मिल जाए कि उसकी चूकों को "लोक हित" के नाम पर हमेशा क्षमा कर दिया जाएगा, तो उसके अधिकारियों के लिए सतर्कता पूर्वक कार्य करने या उसकी संस्थाओं के लिए समय पर कार्रवाई करने हेतु प्रक्रियाओं को सुव्यवस्थित करने का बहुत कम प्रोत्साहन बचेगा। इसका परिणाम लोक हित को बढ़ावा देना नहीं बल्कि उसके साथ विश्वासघात होगा।

53. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पूर्व में यह सिद्धांत प्रतिपादित किया था कि यदि राज्य और उसकी संस्थाओं की ओर से इस आधार पर विलंब क्षमा करने का आवेदन दायर किया जाता है कि इनकार करने से एक गुण-दोष वाले मामले पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ सकता है, तो विलंब को क्षमा करने के लिए एक नरम दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। लोक हित सरकार के उद्देश्य का पर्यायवाची नहीं है; इसके विपरीत, यह कानून के शासन को लागू करने, कानूनी अधिकारों में निश्चितता और एक प्रशासनिक तंत्र जो तत्परता तथा जवाबदेही के साथ कार्य करता है, का पर्यायवाची है। इसलिए, गुण-दोष वाले मामले को स्वीकार करने से इनकार करना, विलंब को क्षमा करने की कसौटी नहीं होगा।

54. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने विधिक प्रतिनिधियों (उपर्युक्त) द्वारा शिवम्मा (मृतक) के मामले में यह अभिनिर्धारित किया है कि मार्गदर्शक सिद्धांत सरकारी उदासीनता का संरक्षण करना नहीं बल्कि जिम्मेदार शासन को बढ़ावा देना है। राज्य का समय पर कार्य करने का उच्च कर्तव्य है, क्योंकि वह जिस भी मामले में वाद लड़ता है, वह अपनी निजी क्षमता में नहीं, बल्कि जनता के हितों के न्यासी के रूप में ऐसा करता है। इसलिए, नौकरशाही की अक्षमता के आधार पर विलंब को क्षमा करने में बार-बार ढिलाई देना मियाद कानूनों के मूल उद्देश्य को कमजोर करने के समान होगा, जिन्हें प्रत्येक सभ्य क्षेत्राधिकार में अंतिमता, निश्चितता और सार्वजनिक व्यवस्था के लिए अधिनियमित किया जाता है।

55. यदि राज्य को विलंब क्षमा करने के लिए आने पर एक विशेष उपचार प्रदान किया जाता है, तो यह मियाद अधिनियम के उद्देश्य को भटका देगा और राज्य तथा उसके अधिकारियों की निष्क्रियता एवं आकस्मिक व्यवहार को और बढ़ावा देगा। यदि पूर्ववर्ती निर्णय के सिद्धांत का पालन किया जाए तो यह अधिकारी को जनता के विरुद्ध कार्य करने के लिए एक "पूर्ण छूट" की शक्ति प्रदान करेगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया है कि विलंब को केवल इसलिए क्षमा नहीं किया जा सकता क्योंकि ऐसा न करने के परिणामस्वरूप राज्य का वाद खारिज हो जाएगा और जिससे लोक हित को नुकसान पहुंचने का प्रत्यक्ष जोखिम होगा। मियाद अधिनियम की धारा 5 के प्रयोजन के लिए ऐसा किसी भी तरह से एकमात्र विचार नहीं हो सकता है, क्योंकि ऐसा करना धारा 3 के प्रावधान और "वाद को शांत करने" की सर्वोपरि लोक नीति की उपेक्षा करना होगा, जो मियाद अधिनियम का आधार स्तंभ है।

56. विलंब क्षमा करने के आवेदन पर विचार करते समय, महत्वपूर्ण परीक्षण यह है कि क्या "पर्याप्त कारण" स्थापित किया गया है। हालांकि, नौकरशाही की अक्षमता से जुड़े मामलों में, न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या विलंब के लिए कोई वैध स्पष्टीकरण है या केवल एक बहाना बनाया गया है। यद्यपि दोनों अवधारणाएं कभी-कभी एक-दूसरे से मिल सकती हैं, फिर भी एक वास्तविक स्पष्टीकरण और एक मात्र बहाने के बीच एक सूक्ष्म अंतर होता है, जिसे अपीलार्थी को संतोषजनक ढंग से स्थापित करना आवश्यक होता है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



57. जब भी विलंब क्षमा करने के आवेदन में कोई स्पष्टीकरण नौकरशाही के विलंब और सरकारी निर्णय लेने की अंतर्निहित जटिलताओं को संदर्भित करता है, तो वह अधिकांश मामलों में एक "बहाने" के दायरे में आएगा। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पोस्टमास्टर जनरल (उपर्युक्त) और विधिक प्रतिनिधियों(उपर्युक्त) द्वारा शिवम्मा (मृतक) के साथ-साथ कई अन्य निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया है कि जहां नौकरशाही की सुस्ती या लालफीताशाही होती है, वहां न्यायालय को यह जांच करनी चाहिए कि क्या कोई वास्तविक कारण मौजूद है और क्या अधिकारियों के आचरण में उचित तत्परता थी। हालांकि, जहां न्यायालय पाता है कि स्पष्टीकरण केवल विलंब को छिपाने का एक बहाना है, या यह कि विलंब घोर लापरवाही, जानबूझकर की गई निष्क्रियता, सद्भावना की कमी या आकस्मिक दृष्टिकोण के कारण हुआ है, वहां न्यायालय को विलंब क्षमा करने के आवेदन पर विचार करते समय एक सख्त रुख अपनाना चाहिए।

58. वर्तमान मामले में, यह अपील एक बहुत ही मामूली मामले से उत्पन्न हुई है। अपीलार्थियों ने ईंटों की आपूर्ति के लिए एक आदेश दिया था, जिसे वादी/प्रत्यर्थी ने आपूर्ति किया था, लेकिन जब धन का भुगतान नहीं किया गया, तो वादी/प्रत्यर्थी ने वसूली के लिए एक वाद दायर किया, जिसे स्वीकार कर लिया गया और 24,966/- रुपये की डिक्री पारित की गई। तत्पश्चात लगभग 16 महीने के विलंब से एक सिविल अपील दायर की गई और उसे 23.07.2003 को खारिज कर दिया गया तथा पुनः लगभग 273 दिनों के अंतराल/अवधि बीत जाने के बाद 21.04.2004 को गलत तरीके से एक सिविल पुनरीक्षण दायर किया गया, जिसे पोषणीय न होने के कारण खारिज कर दिया गया और फिर से आदेश दिनांक 23.07.2003 को चुनौती देते हुए वर्तमान द्वितीय अपील लगभग 517 दिनों के विलंब के साथ 16.02.2017 को दायर की गई है। स्पष्ट रूप से वर्तमान द्वितीय अपील दायर करने में लगभग 4957 दिनों का अंतराल/अवधि बीत चुकी थी। अपीलार्थी को एक गलत मंच के समक्ष इसे चुनौती देने का लाभ देने के बाद भी, वर्तमान अपील में लगभग 700 दिनों का विलंब है और विलंब को क्षमा करने के कारण पर्याप्त नहीं हैं, बल्कि दर्शाए गए कारण कुछ और नहीं बल्कि केवल एक दिखावा हैं और वर्तमान अपील बाद में सोच-समझकर दायर की गई है। विलंब क्षमा करने के आवेदन के समर्थन में दाखिल हलफनामा यह दर्शाता है कि प्रभागीय वन अधिकारी द्वारा 26.01.2016 को पत्र लिखा जाना पर्याप्त नहीं है। बल्कि ऐसा प्रतीत होता है कि पूरक हलफनामा दायर करके कमी को पूरा करने के लिए बाद में प्रयास किए गए हैं और ऐसा करते समय बताए गए कारणों पर भरोसा नहीं किया जा सकता है।

बिना सोचे-समझे और यह महसूस किए बिना कि 26.01.2016 को गणतंत्र दिवस था तथा उस तिथि को अनिवार्य रूप से सभी कार्यालय बंद रहते हैं, यह तिथि भर दी गई। गणतंत्र दिवस पर कोई भी कार्यालय खुला नहीं रहता है और न ही खोला जा सकता है।

59. चूंकि मियाद के नियम सुदृढ़ लोक नीति के सिद्धांत पर आधारित हैं, इसलिए इसके लिए यांत्रिक तरीके से तर्क नहीं दिया जा सकता है। अपीलार्थी इस न्यायालय तक 24,966/- रुपये के एक मामूली मुद्दे को आगे बढ़ा रहा है। सिविल वाद के खारिज होने के बाद शुरू की गई सभी कार्यवाहियां विलंब के साथ दायर की गई हैं।

60. मामले के उपर्युक्त तथ्यों और परिस्थितियों को देखते हुए, चूंकि द्वितीय अपील दायर करने में हुए विलंब को क्षमा करने के लिए पर्याप्त कारण स्थापित नहीं किया गया है, इसलिए विलंब क्षमा करने का आवेदन निरस्त किया जाता है।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



61. परिणामस्वरूप, यह द्वितीय अपील भी खारिज की जाती है।

मामूली एवं बेबुनियादवादों को दायर करना

62. स्पष्ट रूप से, वर्तमान अपील विलंब का एक आदर्श उदाहरण है, मामूली मुद्दे पर अपीलार्थी का उदासीन दृष्टिकोण है, जहां 24,966/- रुपये की डिक्री को अपीलार्थी द्वारा तीन विभिन्न मंचों पर चुनौती दी गई थी। यह कहना गलत नहीं होगा कि राज्य सरकार ने अपने विरुद्ध दिए गए डिक्री मूल्य से अधिक मुकदमा व्यय किया होगा। इस मामले पर इस न्यायालय के समक्ष भी विस्तार से बहस की गई है। अब वह समय आ गया है जब तक राज्य पर एक दंडात्मक हर्जाना नहीं लगाया जाता, तब तक कुछ भी बदलने वाला नहीं है।

63. मामूली और तुच्छ मुकदमों को दायर करना एक अभिशाप है, जिसका सामना न्यायालय कर रहा है, कानूनी लंबितता की समस्या को रोकने और मामूली तथा तुच्छ मामलों को दायर करने पर अंकुश लगाने के लिए, वर्ष 1972 में अखिल भारतीय कानून मंत्री सम्मेलन में केंद्र और राज्यों के लिए राष्ट्रीय मुकदमा नीति विकसित की गई थी, इसके बाद भारत के विधि आयोग की रिपोर्ट आई, जिसने अपनी 54वीं रिपोर्ट में यह कहा था कि अनावश्यक मुकदमेबाजी या अपीलें नहीं होनी चाहिए।

64. तत्पश्चात माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने दिलबाग राय जेरी बनाम भारत संघ, जो (1974) 3 एससीसी 554 में रिपोर्ट किया गया है, में इस बात पर विचार किया कि इस समस्या को रोकने के लिए मुकदमेबाजी में सरकार का दृष्टिकोण क्या होना चाहिए और निम्नानुसार टिप्पणी की:

"अभी दिए गए निर्णय से मेरी पूर्ण सहमति है, लेकिन मैं गुण-दोष पर नहीं बल्कि मुकदमेबाजी के प्रति सरकारी प्रवृत्ति पर कुछ टिप्पणियां करने के लिए प्रेरित महसूस कर रहा हूँ, वर्तमान मामला एक गंभीर कमी का लक्षण है। इस देश में राज्य आज सबसे बड़ा वादी है और इसमें शामिल भारी खर्च सार्वजनिक खजाने पर एक बड़ा बोझ डालता है। राज्य की गतिविधि और जिम्मेदारी के विस्तार के संदर्भ में, क्या इसकी मुकदमा नीति में बेहतर समझ और संवेदनशीलता की अपेक्षा करना अनुचित है, जिसकी अनुपस्थिति ने वर्तमान मामले में रेलवे को उदासीनता और झगड़ालू रूप से अपने ही कर्मचारी, एक छोटे व्यक्ति द्वारा किए गए कार्य का विरोध करने के लिए प्रेरित किया है, एक मात्र तकनीकी दलील देकर जिसे यहाँ सर्वोच्च न्यायालय तक आगे बढ़ाया गया है और अभी सुनाए गए निर्णय में नकारात्मक कर दिया गया है। इस प्रकार के उदाहरण अनगिनत हैं जैसा कि इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि भारत के विधि आयोग ने सिविल प्रक्रिया संहिता के संशोधनों पर एक हालिया रिपोर्ट में धारा 80 को हटाने का सुझाव दिया है, यह पाते हुए कि उस स्वास्थ्यप्रद प्रावधान का सरकार द्वारा शायद ही कभी उपयोग किया जाता है, और दावों के न्यायसंगत निपटारे की एक सक्रिय नीति की आवश्यकता को उजागर करने के लिए सरकारी मुकदमेबाजी के लिए एक विशेष प्रक्रिया प्रदान करने के लिए आगे बढ़ा है जहाँ राज्य एक पक्षकार है। हमारे जैसे कल्याणकारी राज्य के लिए दोमुंहा होना सही नहीं है, और गरीबों को कानूनी सहायता की मानवीय परियोजना तैयार करते समय, मियाद और इसी तरह की दलीलें देकर अपने अधीन गरीब कर्मचारियों के दावों का विरोध करना सही नहीं है। यह प्रवृत्ति पुरानी है जो केरल उच्च न्यायालय के एक निर्णय में मेरे द्वारा की गई कुछ टिप्पणियों से निकलती है जिसे मैं यहाँ उपयोगी रूप से उद्धृत कर सकता हूँ 'राज्य, हमारे संविधान के तहत, एक विशाल और विस्तृत सार्वजनिक क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियाँ संचालित करता है और अनिवार्य रूप से निजी व्यक्तियों के साथ विवादों में शामिल हो जाता

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



है। लेकिन यह याद रखा जाना चाहिए कि राज्य कोई साधारण पक्षकार नहीं है जो अपने ही नागरिकों में से किसी एक के खिलाफ येन-केन-प्रकारेण मामला जीतने की कोशिश कर रहा हो; क्योंकि राज्य का हित ईमानदार दावों को पूरा करना, एक वास्तविक बचाव को साबित करना है और कभी भी तकनीकी बिंदु हासिल करना या किसी न्यायसंगत दायित्व से बचने या अनुचित लाभ सुरक्षित करने के लिए कमजोर पक्षकार को पछाड़ना नहीं है, केवल इसलिए कि कानूनी उपाय ऐसा अवसर प्रदान करते हैं। राज्य एक सदाचारी वादी है और अनैतिक फॉरेंसिक सफलताओं को उदासीनता से देखता है ताकि यदि गुण-दोष के आधार पर मामला कमजोर हो, तो सरकार प्रतिष्ठा और अन्य कम प्रेरणाओं की परवाह किए बिना विवाद को निपटाने की इच्छा दिखाती है जो निजी पक्षकारों को न्यायालय में लड़ने के लिए प्रेरित करती हैं। राज्य और उसकी एजेंसियों द्वारा मुकदमेबाजी की लागत और कार्यकारी समय पर किया जाने वाला व्यय इन दिनों इतना आश्चर्यजनक है क्योंकि इसमें शामिल मुकदमेबाजी की बड़ी मात्रा के कारण कानून के मुकदमों की मात्रा को कम करने की दोहरी विधि द्वारा एक सकारात्मक और स्वास्थ्यप्रद नीति अपनाई जानी चाहिए जहाँ एक उचित समायोजन व्यवहार्य हो और हमेशा उचित शर्तों पर लंबित कार्यवाही को समाप्त करने की पेशकश की जाए, जिससे सरकार के कानूनी सलाहकारों को इस संबंध में कुछ पहल और अधिकार मिले। मैं किसी न्यायिक उपदेश में शामिल नहीं हो रहा हूँ बल्कि केवल 1957 में भारत के कानून मंत्रियों के एक सम्मेलन में विकसित राज्य मुकदमेबाजी पर गतिशील राष्ट्रीय नीति को प्रतिध्वनित कर रहा हूँ। यह द्वितीय अपील मुझे उस नीति की उपेक्षा के एक उदाहरण के रूप में प्रभावित करती है।”

(विशेष जोर दिया गया)

65. तत्पश्चात मुन्द्रिका प्रसाद सिंह बनाम बिहार राज्य, जो एससीसी (1979) 4 एससीसी 701 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

“5. देश के कई अन्य राज्यों की तरह बिहार राज्य में भी मुकदमों की भारी संख्या है। किसी भी राज्य के लिए सरकारी मुकदमा नीति अत्यंत महत्वपूर्ण है यदि न्यायालय की कार्यवाहियों में अपनी संलिप्तता को बढ़ाने के बजाय कम करने के लिए संसाधनों का उचित प्रबंधन किया जाना है। यह अत्यंत निराशाजनक है कि वर्ष 1957 में एक अखिल भारतीय कानून मंत्री सम्मेलन में राज्यों के लिए एक राष्ट्रीय मुकदमा नीति विकसित किए जाने के बावजूद और उन विवादों में जहां सरकार एक पक्षकार है, समझौतों को बढ़ावा देने के लिए केंद्रीय विधि आयोग की सिफारिशों के बावजूद, हम वास्तविक व्यवहार में न्यायालयों में सरकारीवादों का प्रसार पाते हैं जो ऐसी किसी नीति से अनभिज्ञ हैं। वास्तव में, इस देश में जहां कुल मुकदमों में सरकारी मुकदमों का एक बड़ा हिस्सा शामिल है, यह महत्वपूर्ण है कि राज्य को समझौते पर बल देने वाला एक आदर्श वादी होना चाहिए। केंद्रीय विधि आयोग ने केरल के एक निर्णय का स्मरण करते हुए वर्ष 1973 में इस पहलू पर बल दिया था और आदेश 27 नियम 5ख के रूप में पढ़े जाने वाले एक नए प्रावधान की सिफारिश करने की सीमा तक गया था।”

(विशेष बल दिया गया)

66. हालांकि, मुकदमा नीति का पालन नहीं किया गया, भारत के विधि आयोग ने अपनी 126वीं रिपोर्ट (1988) में उस लापरवाह तरीके पर प्रतिकूल टिप्पणी की जिससे नियमित रूप से अपीलें दायर की जाती हैं। विधि आयोग की रिपोर्ट के प्रासंगिक पैराग्राफ निम्नानुसार हैं:

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



"2.5. इस प्रकार मुकदमेबाजी कभी-कभी कर्तव्य का पालन करने में विफल रहने के कारण उत्पन्न होती है मानो किसी न्यास का निर्वहन किया जा रहा हो। शक्ति में एक प्रकार का न्यास अंतर्निहित होता है। राज्य को सार्वजनिक संपत्ति से निपटने की शक्ति प्राप्त है। उस शक्ति का निर्वहन न्यास के लाभार्थियों के हितों को ध्यान में रखते हुए एक न्यास की तरह किया जाना चाहिए। इस मोर्चे पर विफलता पर न्यायालय द्वारा अक्सर टिप्पणी की गई है, जिसे यदि उस भावना से लिया जाता जिस भावना से यह की गई थी, तो इसने बहुत पहले सरकार और सार्वजनिक क्षेत्र को अपनी मुकदमा नीति तैयार करने के लिए प्रेरित कर दिया होता। जब पूरी तरह से तुच्छ मुकदमेबाजी सर्वोच्च न्यायालय के दरवाजे तक पहुंचती है, तो कोई भी व्यक्ति उस निष्क्रियता और कुछ न करने की नीति से निराश महसूस करता है जो एक न्यायालय से दूसरे न्यायालय तक आंख मूंदकर मुकदमेबाजी का पीछा करने से प्रमाणित होती है। पंजाब राज्य द्वारा दायर एक विशेष अनुमति याचिका को खारिज करते हुए न्यायालय ने टिप्पणी की कि अवर न्यायालयों में राज्य की योग्य पराजय मुकदमों के प्रति तत्परता के संबंध में प्रशासन की घोर उदासीनता को प्रदर्शित करती है। इसके बाद न्यायालय ने प्रभावी उपचारात्मक उपायों का सुझाव दिया। इसे उद्धृत किया जा सकता है:

हम इस बात पर बल देना चाहेंगे कि निष्क्रियता के कारण समुदाय पर थोपे गए व्यर्थ के मुकदमेबाजी के खर्च के लिए संसदीय सामाजिक अंकेक्षण द्वारा सरकार को जवाबदेह बनाया जाना चाहिए। सिविल प्रक्रिया संहिता की धारा 80 के तहत प्रस्तावित कार्रवाई का एक वैधानिक नोटिस राज्य को एक न्यायसंगत समझौते के लिए बातचीत करने के लिए सचेत करने या कम से कम संभावित बाहरी व्यक्ति को यह बताने का शिष्टाचार दिखाने के उद्देश्य से है कि दावे का विरोध क्यों किया जा रहा है। अब धारा 80 एक रस्म बन गई है क्योंकि प्रशासन अक्सर अनुत्तरदायी होता है और केंद्रीय विधि आयोग की इसे हटाने की सिफारिशों के बावजूद संहिता में धारा 80 को बनाए रखने में संसद की अपेक्षाओं पर शायद ही खरा उतरता है। मध्यस्थता के माध्यम से विवाद को सुलझाने का एक अवसर पूरी तरह से निष्क्रियता के कारण गंवा दिया गया। राज्य के लिए एक मुकदमा नीति में नागरिकों के साथ सरकारी विवादों का निपटारा लड़ने के मूड के बजाय सुलह की भावना से शामिल है। वास्तव में, राज्य की ओर से यह एक निर्देश होना चाहिए कि वह अपने विधि अधिकारी को न्यायालय में विवादों को जारी रखने के बजाय उन्हें सुलझाने के लिए कदम उठाने के लिए अधिकृत करे। हम इन टिप्पणियों को करने के लिए विवश हैं क्योंकि जिन मुकदमों में सरकारें शामिल हैं, उनमें से अधिकांश मुकदमों के कारण न्यायालयों में मामलों का बोझ बढ़ता है जिसके लिए सार्वजनिक आलोचना होती है। हम आशा करते हैं कि सरकारी मुकदमों में अधिक अनुत्तरदायी भावना लाई जाएगी ताकि सार्वजनिक धन की बर्बादी से बचा जा सके और न्यायालयों में उन मामलों में त्वरित कार्य को बढ़ावा दिया जा सके जो ध्यान दिए जाने के योग्य हैं।"

(विशेष बल दिया गया)

67. दशक बीत गए, लेकिन समय-समय पर कुछ भी नहीं बदला, संवैधानिक न्यायालयों ने सरकारी एजेंसियों द्वारा दायर की जा रही तुच्छ अपीलें/याचिकाओं के बारे में खेद व्यक्त किया। हालांकि, नौकरशाही की मानसिकता पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। ऐसा नहीं था कि नीति निर्माताओं के स्तर पर अवांछित सरकारी मुकदमेबाजी को कम करने की कोई समझ नहीं थी, लेकिन जमीनी हकीकत इसके बिल्कुल विपरीत है। सरकारी एजेंसियों द्वारा मामूली मुद्दों पर अपीलों के बाद अपीलें दायर की गई हैं।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



इसे वैधता के परीक्षण पर भी सफल नहीं होना चाहिए, लेकिन फिर भी विभिन्न कारणों से इन्हें दायर किया गया।

68. केवल वर्ष 2010 में केंद्र सरकार ने सरकार को एक कुशल और जिम्मेदार वादी में बदलने के दृष्टिकोण/मिशन के साथ राष्ट्रीय मुकदमा नीति तैयार की। केंद्र सरकार द्वारा तैयार की गई यह नीति इस मान्यता पर आधारित है कि नागरिकों के अधिकारों की रक्षा करना और उनके मौलिक अधिकारों का सम्मान करना उसकी प्राथमिक जिम्मेदारी थी और इस प्रक्रिया में उसे "जिम्मेदार वादी" बनना चाहिए। नीति 'जिम्मेदार वादी' पद को निम्नानुसार परिभाषित भी करती है:

"जिम्मेदार वादी" से अभिप्रेत है—

- (i) कि मुकदमेबाजी केवल मुकदमा लड़ने के उद्देश्य से नहीं की जाएगी।
- (ii) कि झूठी दलीलें और तकनीकी बिंदु नहीं लिए जाएंगे और उन्हें हतोत्साहित किया जाएगा।
- (iii) यह सुनिश्चित करना कि सही तथ्य और सभी प्रासंगिक दस्तावेज न्यायालय के समक्ष रखे जाएंगे।
- (iv) कि न्यायालय से कुछ भी नहीं छिपाया जाएगा और किसी भी न्यायालय या न्यायाधिकरण को गुमराह करने का प्रयास नहीं किया जाएगा।

2. कि सरकार को एक अनिवार्य वादी होना बंद करना चाहिए। यह दर्शन कि मामलों को अंतिम निर्णय के लिए न्यायालयों पर छोड़ दिया जाना चाहिए, को खारिज किया जाना चाहिए। यह आसान दृष्टिकोण, "न्यायालय को तय करने दें", को त्याग दिया जाना चाहिए और इसकी निंदा की जानी चाहिए।

3. इस नीति का अंतर्निहित उद्देश्य न्यायालयों में सरकारी मुकदमों को कम करना भी है ताकि मूल्यवान न्यायिक समय अन्य लंबित मामलों को सुलझाने में व्यतीत हो सके ताकि राष्ट्रीय कानूनी मिशन में औसत लंबित समय को 15 वर्ष से घटाकर 3 वर्ष करने के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सके। सरकार की ओर से मुकदमा लड़ने वालों को न्यायिक सुधारों के राष्ट्रीय मिशन में शामिल सिद्धांतों को ध्यान में रखना होगा जिसमें उन बाधाओं की पहचान करना शामिल है जिनसे सरकार और उसकी एजेंसियां संबंधित हो सकती हैं और अनावश्यक सरकारी मामलों को हटाना भी शामिल है।

मुकदमेबाजी में प्राथमिकता विशेष रूप से कल्याणकारी कानून, सामाजिक सुधार, कमजोर वर्गों और वरिष्ठ नागरिकों पर बल देते हुए प्राप्त की जानी चाहिए और सहायता की आवश्यकता वाले अन्य श्रेणियों को अत्यधिक प्राथमिकता दी जानी चाहिए।"

(विशेष बल दिया गया)

69. यह नीति इस तथ्य को स्वीकार करती है कि इसकी सफलता इसके कड़ाई से कार्यान्वयन पर निर्भर करेगी। प्रासंगिक रूप से उन अधिकारियों की ओर से जवाबदेही का प्रावधान भी है जिन्हें इस संबंध में आवश्यक कदम उठाने हैं।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



70. अर्बन इम्प्रूवमेंट ट्रस्ट, बीकानेर बनाम मोहन लाल, जो (2010) 1 एससीसी 512 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने सरकारों और राज्य प्राधिकारियों द्वारा अवांछित मुकदमों का संज्ञान लिया और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"10. सरकारों और संविधिक प्राधिकारियों द्वारा अवांछित मुकदमेबाजी मूल रूप से उनके अधिकारियों द्वारा की जाने वाली दो सामान्य निराधार धारणाओं से उत्पन्न होती है। वे हैं:

(i) सरकार/संविधिक प्राधिकारियों के खिलाफ सभी दावों को अवैध माना जाना चाहिए और देश के सर्वोच्च न्यायालय तक उसका विरोध किया जाना चाहिए और लड़ा जाना चाहिए।

(ii) यदि किसी मुद्दे पर निर्णय लेने से बचा जा सकता है, तो यह बुद्धिमानी है कि उस मुद्दे पर निर्णय न लिया जाए और पीड़ित पक्षकार को न्यायालय जाने दिया जाए और निर्णय सुरक्षित करने दिया जाए।

निर्णय लेने में अनिच्छा, या उनके खिलाफ सभी आदेशों को चुनौती देने की प्रवृत्ति, सरकारों या संविधिक प्राधिकारियों की नीति नहीं है, बल्कि इसका कारण कुछ अधिकारी हैं जो निर्णय लेने के लिए जिम्मेदार हैं और/या मुकदमों के प्रभारी अधिकारी हैं। उनकी अनिच्छा किसी भी गलत निर्णय लेने, या इससे भी बदतर, किसी भी निर्णय लेने के लिए अनुचित उद्देश्यों के भविष्य के आरोपों से खुद को बचाने की एक स्वाभाविक प्रवृत्ति से उत्पन्न होती है। जब तक उनकी असुरक्षा और भय को दूर नहीं किया जाता, अधिकारी निर्णय लेने की जिम्मेदारी न्यायालयों और न्यायाधिकरणों पर डालते रहेंगे।

11. केंद्र सरकार अब सरकार के खिलाफ दायर मामलों के बचाव के लिए और प्रतिकूल निर्णयों के खिलाफ अपील और पुनरीक्षण दायर करने के लिए वास्तविक और व्यावहारिक मानदंड तैयार करके इस मुद्दे से निपटने का प्रयास कर रही है, जिससे अनावश्यक मुकदमेबाजी समाप्त हो सके। लेकिन, यह पर्याप्त नहीं है यदि केवल केंद्र सरकार ही ऐसा अभ्यास करती है। राज्य सरकारों और संविधिक प्राधिकारियों को, जिनके पास केंद्र सरकार की तुलना में अधिक मुकदमे हैं, अनावश्यक मुकदमेबाजी को समाप्त करने के लिए वास्तविक प्रयास करने चाहिए। तंग करने वाले और अनावश्यक मुकदमे बहुत लंबे समय से न्याय के पहियों को बाधित कर रहे हैं, जिससे न्यायालयों और न्यायाधिकरणों के लिए सद्भावी और जरूरतमंद वादियों को न्याय तक आसान और त्वरित पहुंच प्रदान करना कठिन हो गया है।"

(विशेष बल दिया गया)

71. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने गुड़गांव ग्रामीण बैंक बनाम खजानी, जो (2012) 8 एससीसी 781 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में छोटे और मामूली मामलों में मुकदमा लड़ने के सरकार के दृष्टिकोण पर विचार किया और निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"2. हमारे देश में मुकदमों की संख्या बढ़ रही है, छोटे और मामूली मामलों के लिए लोग और कभी-कभी केंद्र और राज्य सरकारें तथा उनकी संस्थाएं बैंक, राष्ट्रीयकृत या निजी, न्यायालयों में आते हैं, शायद अहंकार के टकराव के कारण या अधिकारियों को बचाने के लिए। न्यायिक प्रणाली अत्यधिक बोझ से दबी हुई है, जिससे स्वाभाविक रूप से विवादों के न्यायनिर्णयन में विलंब होता है। हमारे देश के विभिन्न हिस्सों में खोले गए मध्यस्थता केंद्रों ने कुछ हद तक न्यायालयों का बोझ कम किया है लेकिन हम अभी भी सुरंग में हैं और रोशनी बहुत दूर है। एक से अधिक अवसरों पर, इस न्यायालय ने केंद्र सरकार, राज्य

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



सरकारों और अन्य संस्थाओं के साथ-साथ विभिन्न बैंकिंग संस्थानों को अपने स्तर पर विवादों को हल करने के लिए गंभीर प्रयास करने की याद दिलाई है। कभी-कभी, कुछ देने और लेने का दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए अन्यथा दोनों डूब जाएंगे। जब तक कि विचार के लिए सामान्य महत्व के कानून के गंभीर प्रश्न उत्पन्न न हों या ऐसा प्रश्न जो बड़ी संख्या में व्यक्तियों को प्रभावित करता हो या दांव पर लगी राशि बहुत अधिक हो, छोटे और तुच्छ मामलों के समाधान के लिए न्यायालयों के क्षेत्राधिकार का सहारा नहीं लिया जा सकता है।

(विशेष बल दिया गया)

75. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पंजाब राज्य विद्युत निगम लिमिटेड पटियाला एवं अन्य बनाम आत्मा सिंह ग्रेवाल, जो (2014) 13 एससीसी 666 में रिपोर्ट किया गया है, के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"13. अफसोस, सरकार की अपनी नीति और इस न्यायालय की फटकार के बावजूद, अनगिनत अवसरों पर, विभिन्न सरकारी अधिकारियों पर कोई महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है जो तुच्छ और तंग करने वाली अपीलें दायर करने का निर्णय लेना जारी रखते हैं। यह न्यायालयों पर अनावश्यक बोझ डालता है। विपरीत पक्षकार जो अवर न्यायालय में सफल हुआ है, उसे भी टारे जा सकने वाले खर्च को वहन करने के लिए मजबूर किया जाता है। इसके अलावा, यह सफल वादी को अवर न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के लाभ प्राप्त करने में विलंब का कारण बनता है।

76. इसमें कोई संदेह नहीं है कि जब कोई मामला किसी पक्षकार के पक्ष में तय किया जाता है, तो न्यायालय उसके पक्ष में लागत भी दे सकता है। इस न्यायालय द्वारा इस बात पर बल दिया गया है कि ऐसी लागत वास्तविक और प्रतिपूरक शर्तों में होनी चाहिए न कि केवल प्रतीकात्मक। जब अपील पूरी तरह से किसी भी गुण-दोष से रहित हो तो अनुकरणीय लागत भी हो सकती है। [देखें रामेश्वरी देवी और अन्य बनाम निर्मला देवी और अन्य; (2011) 8 एससीसी 249]। हालांकि, मुख्य प्रश्न यह है कि क्या केवल लागत लगाना ही निवारक साबित होगा? हम ऐसा नहीं सोचते। हम इस दृढ़ राय के हैं कि केवल राज्य/सार्वजनिक क्षेत्र के उपक्रमों पर लागत लगाने से कोई बड़ा अंतर नहीं पड़ने वाला है क्योंकि अपील दायर करने का ऐसा गैर-जिम्मेदाराना निर्णय लेने वाले अधिकारी व्यक्तिगत रूप से प्रभावित नहीं होते हैं क्योंकि लागत, यदि लगाई जाती है, तो वह सरकार के खजाने से आती है। इसलिए, अगला कदम उठाने का समय आ गया है अर्थात् ऐसे अधिकारियों से लागत की वसूली करना जो अपील दायर करने का ऐसा तुच्छ निर्णय लेते हैं, यह अच्छी तरह से जानने के बाद भी कि ये पूरी तरह से तंग करने वाली और अनावश्यक अपीलें हैं। हम स्पष्ट करते हैं कि संबंधित अधिकारी से लागत की वसूली का ऐसा आदेश केवल उन्हीं मामलों में पारित किया जाए जहां अपील प्रथम दृष्टया तुच्छ पाई जाए और अपील दायर करने का निर्णय भी स्पष्ट रूप से तर्कहीन और अनावश्यक पाया जाए।"

(विशेष बल दिया गया)

77. माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने पांडुरंग विठ्ठल केवणे बनाम भारत संचार निगम लिमिटेड एवं अन्य; विशेष अनुमति याचिका (सिविल) डायरी संख्या 56230/2024 के मामले में निम्नानुसार अभिनिर्धारित किया:

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



"18. याचिकाकर्ता की बार-बार और तुच्छ मुकदमेबाजी ने न्यायालय का मूल्यवान समय और संसाधन बर्बाद किए हैं। यह न्याय के हित में है कि वास्तविक और सामयिक दावों को कुशलतापूर्वक संबोधित किया जाए, बिना ऐसे बेईमान मुकदमों से बाधित हुए। हम यहाँ इस न्यायालय द्वारा सुब्रत रॉय सहारा बनाम भारत संघ में दी गई एक टिप्पणी का संदर्भ ले सकते हैं: "150. भारतीय न्यायिक प्रणाली तुच्छ मुकदमों से अत्यधिक पीड़ित है। वादियों को उनकी अनिवार्य सनक, संवेदनहीन और बिना सोचे-समझे दावों के प्रति हतोत्साहित करने के लिए तरीके और साधन विकसित करने की आवश्यकता है। किसी को यह ध्यान में रखने की आवश्यकता है कि मुकदमेबाजी की प्रक्रिया में, प्रत्येक गैर-जिम्मेदार और संवेदनहीन दावे के दूसरी तरफ एक निर्दोष पीड़ित होता है। वह उसकी ओर से बिना किसी गलती के, मुकदमे के लंबित रहने के दौरान घबराहट और बेचैनी की लंबी अवधि भुगतता है।"

20. समय-समय पर, इस न्यायालय ने वादकारी पक्षों पर लागत लगाकर तुच्छ अपीलों और याचिकाओं के विरुद्ध निवारण बढ़ाया है। इस न्यायालय ने के.सी. थारकन बनाम स्टेट बैंक ऑफ इंडिया एवं अन्य⁷ के मामले में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया: "किसी भी कानूनी प्रणाली में ऐसा परिदृश्य नहीं हो सकता जहां कोई व्यक्ति सर्वोच्च स्तर पर समाधान होने के बाद बार-बार मुद्दे को उठाता रहे। यह न्यायिक समय की पूरी तरह से बर्बादी है। इस प्रकार, हम इस याचिका को लागत के साथ खारिज करते हैं, हालांकि हम याचिकाकर्ता को एक बर्खास्त व्यक्ति मानते हुए लागत की राशि को सीमित करते हैं। रिट याचिका 10,000/- रुपये की लागत के साथ खारिज की जाती है, जिसे सुप्रीम कोर्ट एडवोकेट्स-ऑन-रिकॉर्ड वेल्फेयर फंड में जमा किया जाएगा और एससीबीए पुस्तकालय के लिए उपयोग किया जाएगा।"

22. यह विचार करते हुए कि याचिकाकर्ता द्वारा इस न्यायालय और उच्च न्यायालय का बहुमूल्य समय बर्बाद किया गया था, हमारी राय में याचिकाकर्ता पर भारी लागत का बोझ डाला जाना चाहिए, ताकि याचिकाकर्ता जैसे बेईमान वादकारियों को स्पष्ट संदेश दिया जा सके कि वे न्यायिक प्रणाली के साथ खेलने का साहस न करें। इस प्रकार के वादकारी न केवल न्याय की धारा को प्रदूषित कर रहे हैं बल्कि दूसरों को न्याय प्रदान करने में बाधाएं खड़ी कर रहे हैं। याचिकाकर्ता ने जो बहुमूल्य न्यायिक समय बर्बाद किया है, उसका उपयोग उन अन्य वादकारियों के मामलों को लेने के लिए बहुत अच्छी तरह से किया जा सकता था जो न्याय की प्रतीक्षा कर रहे हैं। वास्तव में इस प्रकार के वादकारी न्यायालय की प्रणाली को अवरुद्ध कर रहे हैं, जिसके परिणामस्वरूप अन्य मामलों के निर्णय में विलंब हो रहा है। विभिन्न स्तरों पर न्यायालयों का यह भी कर्तव्य है कि वे इस प्रकार की मुकदमेबाजी पर अंकुश लगाएं ताकि वास्तविक मुकदमेबाजी से निपटने के लिए अधिक समय उपलब्ध हो सके।"

(विशेष बल दिया गया)

74. यहां तक कि उत्तर प्रदेश राज्य भी एक राष्ट्रीय मुकदमा नीति लेकर आया, लेकिन उसका पालन नहीं किया गया।

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



75. सरकार की अपनी नीति और सर्वोच्च न्यायालय की फटकार के बावजूद, अनगिनत अवसरों पर, विभिन्न सरकारी अधिकारियों पर कोई महत्वपूर्ण सकारात्मक प्रभाव नहीं पड़ा है जो मामूली, तुच्छ और तंग करने वाली अपीलें दायर करने का निर्णय लेना जारी रखते हैं। यह न्यायालयों पर अनावश्यक बोझ डालता है।

76. विपरीत पक्षकार जो अवर न्यायालय में सफल हुआ है, उसे भी टारे जा सकने वाले खर्च को वहन करने के लिए मजबूर किया जाता है। इसके अलावा, यह सफल वादकारी को अवर न्यायालय द्वारा दिए गए निर्णय के लाभ प्राप्त करने में विलंब का कारण बनता है।

77. यह एक उत्कृष्ट मामला है जहां छोटे धन की डिक्री, जो 25,000/- रुपये से कम है, राज्य ने एक अपील दायर की थी और उसके बाद इस न्यायालय के समक्ष एक पुनरीक्षण प्रस्तुत किया और उसे खारिज किए जाने के बाद, इस न्यायालय के समक्ष वर्तमान द्वितीय अपील दायर की गई है। कुल मिलाकर, राज्य ने वर्तमान मुकदमेबाजी को आगे बढ़ाने में डिक्री की गई राशि से अधिक धन खर्च किया प्रतीत होता है। इसके अलावा, इस न्यायालय का बहुमूल्य समय भी नष्ट हुआ है।

78. भारत सरकार ने आयकर और अन्य करों से संबंधित मामूली मामलों में अपीलों को आगे न बढ़ाने का एक नीतिगत निर्णय लिया है। हालांकि, राज्य अभी भी सो रहा है और न तो कोई गंभीर निर्णय लिया गया है और न ही कोई गंभीर मुकदमा नीति बनाई गई है और उसका पालन किया गया है।

79. विलंब की अवधि और उस आकस्मिक तरीके को देखते हुए जिसमें अपीलार्थी ने अपील दायर करने की प्रक्रिया शुरू की थी, इस प्रकार की मामूली और तुच्छ मुकदमेबाजी न्याय के पहिये को अवरुद्ध करती है और गरीब वास्तविक वादकारी को सुनवाई का अवसर नहीं मिलता है, इस परिपाटी को रोका जाना चाहिए। इस न्यायालय को इस परिपाटी पर अंकुश लगाने के लिए अपीलार्थियों पर लागत लगाने का यह एक उपयुक्त मामला लगता है।

80. तदनुसार, अपीलार्थियों पर 50,000/- रुपये (रुपये पचास हजार मात्र) की लागत लगाई जाती है। लागत की राशि का भुगतान केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के उन कर्मियों की विधवाओं को किया जाएगा, जिन्होंने नक्सलियों से लड़ते हुए अपनी जान गंवाई थी। तदनुसार, लागत का भुगतान "सीआरपीएफ फैमिली वेलफेयर एसोसिएशन", ब्लॉक-1, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नई दिल्ली को किया जाएगा।

81. चूंकि राज्य पर लागत लगाने से समस्या का समाधान नहीं होगा, इसलिए अधिकारियों को उनकी नौद से जगाने का एकमात्र तरीका यह है कि यदि इस प्रकार लगाई गई लागत उनसे वसूल की जाए। इसलिए, अपीलार्थी के लिए यह खुला है, यदि वे ऐसा चाहें, तो उक्त लागत की राशि उन अधिकारियों से वसूल कर सकते हैं, जो विभिन्न न्यायालयों के समक्ष कार्यवाही दायर करने में विलंब के लिए जिम्मेदार थे।

82. अलग होने से पहले, मैं अपने रिसर्च एसोसिएट, श्री उत्कर्ष शुक्ला के गहन शोध और इस निर्णय को तैयार करने में उनके द्वारा प्रदान की गई मूल्यवान सहायता की सराहना करना चाहूंगा।

(प्रशांत कुमार, न्यायमूर्ति)

13 फरवरी, 2026

अनुपम/-

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"



Translated version. Not for Legal Use.

"अनुवादित निर्णय वादी के समझने हेतु है और इसका किसी अन्य उद्देश्य के लिए प्रयोग नहीं किया जा सकता है। सभी कानूनी और सरकारी उद्देश्यों के लिए, निर्णय का मूल संस्करण ही मान्य होगा।"